मेहनतकशों का पैग़ाम

मेहनतकशों के नाम

मज़दूर मोर्चा

पाक्षिक

Email : mazdoormorcha@yahoo.co.in
www.mazdoormorcha.com

Postal Reg. No. L/H.R/FBD/463-06 /R.N.I. No. 66400/97

प्रोफ़ेसर सांईबाबा की गिरफ़्तारी का मतलब दुकानदार पर गुंडों का हमला 3

महिलाओं के प्रति बढ़ रहे अपराधों से निपटने को शासकों का रुख 4

लुटेरे नंगे नाचे इस चुनाव में जैसी प्रजा वैसा राजा 6

इ एस आई सी मेडिकल कॉलेज को बी के अस्पताल से जोड़ मज़दूरों के साथ बड़ा धोखा 8

वर्ष 27 अंक 13 फरीदाबाद, वीरवार, 16-31 मई 2014 फोन : - 9999595632 ₹ 2

इस बार भी वोटर समझदार

विकल्पहीन राजनीति में फ़ंसा भारत का वोटर जहां तक संभव है, चुनावी कवायद से अपने लिये कुछ न कुछ हासिल करने की पहल कर ही लेता है। 2014 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस की राजनीति को मतदाताओं ने पूरी तरह नकार दिया। हालांकि वक्त ही बतायेगा कि नये प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा की सरकार भी एक और 'कांग्रेस' सरकार ही सिद्ध होगी।

मज़दूर मोर्चा, दिल्ली ब्यूरो

लोकसभा चुनाव 2014 के प्रचार में इन्टरनेट पर सोनिया और मनमोहन का एक प्रसंग अत्यंत प्रचलित रहा। दस साल से चुप बैठे मनमोहन को सोनिया ने ललकारा-''अरे अब तो बोल सरदार!'' सरदार का जवाब आया-''अब की बार, मोदी सरकार।'' दूसरे शब्दों में मनमोहन सरकार की कारसतानियों ने ही भाजपा और मोदी की व्यापक विजय ज़मीन तैयार की। मंहगाई, भ्रष्टाचार, कुशासन एवं जनता से दूरी के चलते इन 10 वर्षों में जो प्रशासनिक शून्य पैदा हो गया था, उसे मोदी की 'कर्मठ' छवि से भरने की स्वीकृति इस जनादेश में ध्वनित होती है।

मोदी और भाजपा ही नहीं, कांग्रेस की राजनीति का विरोध करने वाली हर पार्टी को वोटर ने अपना विश्वास दिया। तमिलनाडु में जयललिता, पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी और उड़ीसा में नवीन पटनायक को मिली सफ़लता इसका जीता-जागता उदाहरण हैं। यहां तक कि, कम सीटें मिलने के बावजूद, सवा साल पुरानी 'आप' भी एक राष्ट्रीय पार्टी के रूप में उभर कर सामने आई है।

इसके बरक्स कांग्रेस से वक्त-बेवक्त याराना दिखाने वालों का जनता ने सूपड़ा साफ़ कर दिया है। इस श्रेणी में मायावती, मुलायम, लालू, डी एम के और वामपंथियों को रखा जा सकता है। पंजाब में भाजपा के सहयोगी अकाली दल को खारिज करने के पीछे भी वोटर की समझदारी ही झलकती है। यानी उसने आंख मूंद कर भाजपा के हर भले-बुरे का समर्थन नहीं किया है। यहां तक कि अकालियों के कुशासन और भ्रष्टाचार का खामियाजा दिल्ली छोड़ कर अमृतसर चुनाव लड़ने पहुंचे वरिष्ठ भाजपाई अरूण जेटली को भी भुगतना पड़ा।

विशाल जीत के बावजूद, झकझोरने वाली बात यह है कि देश के सबसे बड़े अल्पसंख्यक समुदाय-मुसलमान ने मोदी को वोट नहीं दिया। यह भी शायद पहली बार हुआ है कि देश में हुए किसी भी चुनाव में मुस्लिम मतदाता पूरी तरह अप्रासांगिक बना दिया गया है। यह 1984 के इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद हुए कांग्रेस की महती जीत वाले चुनाव की याद दिलाता है, जिसमें एक अन्य अल्पसंख्यक समुदाय-सिख-को अप्रासांगिक बना दिया गया था। यानी संकुचित हिन्दू राष्ट्रवाद को पुन: खेलने की ज़मीन मिल गयी है। इस बार चिन्ताजनक यह भी है कि मोदी और भाजपा की पीठ पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी सवारी गांठ रहा होगा।

वोटर ने अपना काम कर दिया है। अप्रत्याशित रूप से उसने भाजपा को पूर्ण बहुमत दिया ताकि बाद में बहानेबाज़ी का मौका न रह जाय। वोटर के सरोकार राजनीतिक दलों के सरोकारों से अलग होते हैं। रोज़गार, महंगाई और सुशासन की जो उम्मीद वोटर ने लगाई है, मोदी सरकार उस पर कितनी खरी उतर पायेगी? यह सरकार भी उसी तरह पूंजीशाहों की जेब में बैठी हुई व्यवस्था है जैसी सोनिया-मनमोहन की कांग्रेस सरकार हुआ करती थी। क्या मोदी अपने कॉर्पोरेट प्रेम से छुटकारा पा सकते हैं? मोदी नाम के अरबी घोड़े पर कॉर्पोरेट ने अपने हज़ारो करोड़ यूं ही नहीं दांव पर लगाये हैं।

मोदी के आने की आहट से शेयर बाज़ारों में, जो वास्तव में अमीरों के सट्टाबाज़ार ही हैं, जबरदस्त तेज़ी आ गई है। इसी अंदाज़ में भारतीय रुपया भी अमेरिकी डॉलर के मुकाबले मज़बूत होना शुरू हो गया है। यह भी अमीर वर्गों के ही फ़ायदे को सौदा है। यह सब अपेक्षित भी था। सवाल है आम जनता के मतलब की स्थितियां कब प्रगट होना शुरू होंगी?

कांग्रेस इज़ डेड, लॉग लिव द कांग्रेस

2014 के लोकसभा चुनाव में मोदी ने 'कांग्रेस मुक्त भारत' का नारा दिया था। एक हद तक उन्होंने यह नारा सफ़ल करके भी दिखा दिया। वास्तव में मां-बेटे की कांग्रेस का पूरे भारत में बस नाम का अस्तित्व ही रह गया है।

तो क्या भारतीय परिदृष्य से देश की सबसे पुरानी राजनीतिक पार्टी का सफ़ाया हो गया? अंग्रेज़ों के साम्राज्य के दिनों में एक प्रचलित मुहावरा हुआ करता था-'किंग इज़ डेड, लॉग लिव द किंग'। मतलब यह कि यदि अंग्रेज़ बादशाह की मृत्यु भी हो जाय तो भी उसे एक अन्य अंग्रेज़ बादशाह से ही बदला जा सकता है। कहीं यही भारत में भी तो नहीं होने जा रहा? कांग्रेस तो समाप्त हो गयी पर उसके स्थान पर आई भाजपा भी कांग्रेस ही न सिद्ध हो। दरअसल, लक्षण तो ऐसे ही हैं। मोदी के नेतृत्व में भाजपा ने इस चुनावी दौर में जैसी कलाबाज़ियां दिखाई हैं। उससे लगता है कि वह लगभग कांग्रेस ही बन चुकी है।

तो क्या यह कहना ठीक नहीं होगा कि 'कांग्रेस इज़ डेड, लॉंग लिव द कांग्रेस'।

ख़बर दार

आर्मी चीफ की नियुक्ति पर राजनीति

-जुगल किशोर गुप्ता

वर्तमान आर्मी चीफ जनरल बिक्रम सिंह आगामी 31 जुलाई को रिटायर हो रहे हैं इसलिए वर्तमान यूपी ए सरकार ने नए थल सेनाध्यक्ष की नियुक्ति की प्रक्रिया शुरू कर दी थी। थल सेना के वाइस चीफ लेफ्टिनेंट जनरल दलबीर सिंह सुहाग थल सेना के अगले चीफ के लिये प्रमुख दावेदार है। वरिष्ठता में जनरल बिक्रम सिंह के बाद लेफ्टिनेंट जनरल सुहाग का ही नाम है। इसलिए रक्षा मंत्री ऐ.के. एंटोनी ने लेफ्टिनेंट जनरल सुहाग के नाम की ही सिफारिश की है। सेवानिवृत आर्मी चीफ जे.जे. सिंह, जनरल दीपक कपूर आदि ने स्पष्ट किया है कि सेना की स्वस्थ परम्परा के अनुसार अगले आर्मी चीफ के चुनाव के लिए सामान्य प्रक्रिया वर्तमान आर्मी चीफ के रिटायर होने से 5-6 माह पहले प्रारम्भ हो जाती है और उसके रिटायर होने से 2-3 माह पहले उसके उत्तराधिकारी की नियुक्ति की जाती है जिससे नव नियुक्त जनरल पहले वाले जनरल के साथ 2-3 माह काम करके आवश्यक अनुभव प्राप्त कर सके। गौरतलब है कि वर्तमान आर्मी चीफ जनरल बिक्रम सिंह और पूर्व जल सेना प्रमुख ऐडमिरल निर्मल वर्मा की नियुक्ति तत्कालीन आर्मी चीफ और जल सेना चीफ के रिटायर होने से तीन माह पूर्व कर दी गई थी। आर्मी के नए चीफ की नियुक्ति का मसला यूपीए सरकार ने चुनाव आयोग को भेज दिया था जिस पर चुनाव आयोग ने कहा था कि रूटीन नियुक्तियां वर्तमान सरकार कर सकती है। इस तरह के फैसले चुनाव आचार संहिता के अंतर्गत नहीं आते।

पूर्व थल सेनाध्यक्ष जनरल वी.के. सिंह जो अब गाज़ियाबाद संसदीय क्षेत्र से भाजपा के सांसद हैं ने यूपीए सरकार द्वारा अपने कार्यकाल के अंतिम पड़ाव में नए सेना प्रमुख की नियुक्ति के प्रयास की आलोचना करते हुए कहा कि सरकार को यह मामला आगामी सरकार पर छोड़ देना चाहिए। इस बारे में प्रमुख विपक्षी दल भाजपा ने भी सरकार को आगाह किया कि नई सरकार के गठन तक वर्तमान यूपीए सरकार महत्वपूर्ण पदों पर कोई नियुक्तियां न करे। भाजपा ने राष्ट्रपति तथा चुनाव आयोग के सामने भी इस मामले में अपना कड़ा विरोध प्रकट करते हुए उनसे आग्रह किया कि वे सरकार को इस मामले में आगे बढने से रोके। इसके अतिरिक्त भाजपा द्वारा हर स्तर पर इस मसले पर यूपीए सरकार के इस प्रयास की आलोचना की जा रही है। भाजपा के विरोध के मद्देनज़र सरकार ने अपने फैसले पर अमल रोक दिया और नए आर्मी चीफ की नियुक्ति करने का मसला चुनाव आयोग को पुन: भेज दिया। चुनाव आयोग ने इस मसले पर अभी तक सरकार को अपने निर्णय की कोई सूचना नहीं दी है। आश्चर्य है कि चुनाव आयोग ने पहले रूटीन नियुक्तियों को सरकार का अधिकार माना था और यह भी कहा था कि इस तरह के फैसले चुनाव आचार संहिता में नहीं आते। अब चुनाव आयोग द्वारा अपना फैसला सूचित करने में असाधारण देरी करना आश्चर्यजनक है। इसके साथ ही यूपीए सरकार द्वारा इस मसले को पुन: चुनाव आयोग को भेजना हास्याजनक व तर्कहीन है। यदि यह मसला आगामी सरकार पर छोड़ दिया गया तो नई सरकार बनने में 16 मई को मतगणना के बाद लगभग एक सप्ताह लग जाएगा और उसके बाद नए आर्मी चीफ की नियुक्ति के लिए केवल दो माह और कुछ ही दिन बचेंगे जो कि अपर्याप्त समय होगा।

गौरतलब है कि जब यूपीए सरकार ने जल सेना के चीफ के रिक्त पद पर ऐडमिरल आर.के. धवन की नियुक्ति की तो भाजपा ने इसका कोई विरोध नहीं किया। एनडीए शासन काल में भाजपा ने जल सेना चीफ के पद पर ऐडमिरल अरूण प्रकाश की नियुक्ति अपने कार्यकाल के अंतिम पड़ाव में यूपीए सरकार के पद ग्रहण करने से कुछ दिन पूर्व ही मई 2004 में की थी। तब प्रमुख विपक्षी दल कांग्रेस ने भाजपा के इस फैसले का कोई प्रतिरोध नहीं किया था क्योंकि सेना के नए चीफ की नियुक्तियों पर फैसला लेना एक रूटीन परम्परा रही है।

भाजपा द्वारा नए आर्मी चीफ की नियुक्त का विरोध करना हास्यास्पद, तर्कहीन व नाकारात्मक सोच है। ऐसा लगता है कि भाजपा का उद्देश्य है-यूपीए सरकार के प्रत्येक कदम का विरोध करना। आरोप लगाया जाता है कि रिटायर्ड जनरल वी.के. सिंह नहीं चाहते कि वायस चीफ़ लेफ्टिनेंट जनरल सुहाग अगले थल सेना प्रमुख बने। उनकी रूचि दक्षिणी आर्मी कमांडर लेफ्टिनेंट जनरल अशोक सिंह को अगला थल सेना प्रमुख बनाने में है क्योंकि लेफ्टिनेंट जनरल अशोक सिंह उनके समधी है जिनके पुत्र से रिटायर्ड जनरल वी.के. सिंह की पुत्री की शादी हुई है। भाजपा व जनरल वी.के. सिंह आश्वस्त हैं कि इस चुनाव के बाद भाजपा की सरकार बनेगी और वे अपनी पसंद के व्यक्ति को आर्मी चीफ के पद पर नियुक्त कर देंगे।

स्पष्ट है कि नए आर्मी चीफ की नियुक्ति के मामले में यूपीए सरकार के फैसले का भाजपा द्वारा विरोध पक्षपात पूर्ण तथा सेना का राजनीतिकरण करने का प्रयास है।

मोहम्मद तुगलक गुड़गांव में

गुड़गांव (म.मो.) गुड़गांव में पिछले कई महिनों से एक अजीब तमाशा चल रहा है। हर रविवार ट्रैफिक पुलिस, प्रशासन और कुछ तथाकथित 'नागरिक' मिलकर, पैदल यात्रियों व साईकिल सवारों के अधिकार के नाम पर दो तीन 'सड़कों' को मोटर वाहनों के लिये बन्द कर देते हैं। बेचारे गाड़ियों, मोटरसाइकिलों वाले परेशान होते, चक्कर काटते घूमते रहते हैं और घूम घामकर अपने गण्तव्य स्थानों को पहुंचते हैं। जबकि इक्का-दुक्का पैदल और साईकिल वाले उन तीस फुट चौड़ी सड़कों पर तफरीह कर रहे होते हैं। गौरतलब ये है कि इन सड़कों पर उस दिन उतने पैदल यात्री नहीं होते जितने पुलिस वाले वहां मोटर वाहनों को रोकने के लिये तैनात होते हैं।

आम आदमी के लिये 'कोढ में खाज' ये हुई कि हमारे 'मुहम्मद तुगलक' श्री प्रवीन कुमार 'आई.ए. एस.,' गुड़गांव म्युनिसिपल कार्पोरेशन में कमिश्नर के पद पर आसीन हो गए। वो तो ऐसे मूर्खतापूर्ण कार्यों की ताक में रहते ही हैं। सो उन्होंने आते ही घोषणा कर दी कि अब इस कार्यक्रम को और भी कई सड़कों पर चलाया जायेगा और इसमें गुड़गांव म्युनिसिपल कारपोरेशन (एम.सी.जी.) किसी की मदद या स्पॉंसरशिप नहीं लेगा। ध्यान रहे कि ये प्रवीन कुमार वही शख्स हैं जिन्होंने फ़रीदाबाद में डीसी होने के दौरान शहर के बहुत सारे चौराहों को चौड़ा करने के नाम पर (उनके डिवाइडरों) को स्वयं जे.सी.बी. से तुड़वा दिया था। इसके कारण कई महीनों तक उन चौराहों पर ट्रैफिक जाम और जलभराव की समस्या लोग़ों ने भुगती और फ़िर उन चौराहों को दोबारा वैसा ही करने के काम पर 'हूडा' के इन्जीनियरों ने मोटी चांदी कूटी।

दुर्भाग्य की बात ये है कि जो एम.सी.जी अपने शहर से कूड़ा तक उठाने का प्रबन्ध नहीं कर सकती वो जनता के पैसों को ऐसी तुगलकी योजनाओं में बर्बाद करने में एक सेकन्ड नहीं लगाती। और हमारे इन्जीनियरों और नगर योजनाकारों का आलम यह है कि पुरानी तो छोड़िए नयी बन रही सड़कों पर भी कोई फुटपाथ या साईकिल ट्रेक नहीं बनायेंगे बल्कि अच्छी भली सड़कों को बन्द कर के ट्रैफिक जाम की समस्या को और विकराल करेंगे। हूडा गुड़गांव के प्रशासक रह चुके प्रवीन कुमार आई.ए.एस. से पूछा जाना चाहिए कि वहां रहते हुए उन्होंने कितनी सड़कों का डिजाइन ठीक करवाया व उनमें फुटपाथ और साईकिल ट्रैक बनवाया। या फिर सिर्फ इस शोशेबाजी के द्वारा ही हमारी सारी समस्याओं का हल कर देना चाहते हैं?

कंचन लाल की कविता

सुन मेरे बंधु सुन मेरे सुन संसद के सुन बड़े-बड़े गुन

फिर जाग कबीरा जाग कबीरा
जाग कबीरा जाग–2
गहरी नदिया नांव पुरानी
हो गयी तेरी बात पुरानी–2
अब तू नये नये दोहा बोल–
खोल संसद की तू पोल–2
जागा फिर से आज कबीरा
मुंह से उगले आग
फिर जाग कबीरा जाग
कबीरा जाग कबीरा जाग
सुन मेरे बंधु सुन मेरे सुन,
संसद के ये बड़े–बड़े गुन,
इसमें बैठे सन्यासी और डाकू,
रावण, दुर्योधन देश की संसद जर्जर
काया चाटे दीमक पल–पल धुन
संसद बन गयी गिद्धों जैसी
धन पशुओं का जंगल
छीना–झपटी मची लूट की
संसद बन गयी दंगल
धन–बल का मल्लयुद्ध बनी
पर गायें सब मिल मंगल
इसमें उसका गिरेबां पकड़ा
उसने तोड़े इसके दांत
उसने इसका माथा फोड़ा
इसने तोड़े उसके हाथ
किसी ने थूका पान–मसाला
किसी ने मारी पीछे लात
जागा फिर से आज कबीरा
मुंह से उगले आग,
फिर जाग कबीरा जाग कबीरा
जाग कबीरा जाग,
किसी ने कुर्सी चांद पे चप्पल
किसी ने गमला लै थामा
किसी ने उसका कुर्ता फाड़ा
किसी ने खैंचा पैजामा
बहनोई है मालिक इनके
नेता साले और मामा
कौन है भूखा–सूखा मरियल
निर्धन को अब जाने कौन
धनवानों के हित को साधे
देखो भईया संसद मौन
संसद के अब गलियारे में
घूम रहे हैं प्यारे डौन
लोकतंत्र की संसद देखो महिमा रूप निराले
मंत्री अफसर जज और जेलर,
सेना इसके रखवाले
धनवानों की भरे तिजोरी
सब है इसके मतवाले
पूंजीपति के साधन सब हैं
न्यूज चैनल टी.वी.
उसकी खाते उसकी गाते
महिमा बुद्धिजीवी
पीते प्याला भर–भर का खून
जौंके परजीवी
कहने को ये जनता का है राज
पर पूंजीपति की ठोकर पे है
भईया सारे देश की लाज
हक मांगोगे खाओगे फिर
लाठी गोली डण्डे आज
खेल सके तो खोल कबीरा
अब तो सारे इसके भेद
धन और धरती बंट के रहेगी
क्या–क्या होगा आगे देख
अब शोषित सेना बरछी–
भाले करन चली है सौ–सौ छेद
आज भी तेरे लिए दिल में
उमड़ रहा अनुराग
फिर जाग कबीरा जाग
कबीरा जाग कबीरा

साम्प्रदायिक और लक्षित हिंसा

(न्याय और पुनर्वास तक पहुंच) विधेयक 2011: एक नज़र में

हमारे आज़ाद भारत का इतिहास लगातार किसी एक समुदाय को निशाना बनाकर की गयी हिंसा और साम्प्रदायिक हमलों का गवाह रहा है। इस तरह की हिंसा से न केवल जान और माल का नुकसान होता है, लोग अपने घर और जमीन से उजड़ते हैं बल्कि हमारे संविधान द्वारा सभी भारतीयों को दिये गये बराबरी के अधिकार का भी हनन होता है। यही नहीं इस तरह की हिंसा हमारी साझा संस्कृति को खत्म कर समुदायों में एक दूसरे से डर, तनाव और नफरत को बढावा देती है। इस तरह साम्प्रदायिक और लक्षित हिंसा हमारे लोकतांत्रिक ताने-बाने को नष्ट करने पर आमादा है और एक सभ्य राष्ट्र के रूप में हमारी पहचान पर कलंक है।

कुछ उदाहरणों से बात और साफ़ हो जाएगी। हमारे देश में किसी समूह को निशाना बनाकर की गयी हिंसा के दौर बार-बार आते रहे हैं। इन हिंसक वारदातों के सबसे भयानक शिकार औरतें और बच्चे होते हैं। पिछले तीन दशकों में इस प्रकार की हिंसा की घटनाओं में न केवल बढ़ोत्तरी हुई है बल्कि उनका पैमाना भी बहुत बढ़ गया है। इन हिंसक वारदातों में राज्य की बदलती हुई भूमिका गौरतलब है। किसी घटना में राज्य ने हिंसा को उकसाया है, कहीं प्रायोजित किया है और कहीं अपने साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह के हिसाब से उसने खामोशी से तमाशा देखा है और हिंसक समूहों को खुलेआम अपनी मनमानी करने दी है।

नेल्ली, आसाम (1983), दिल्ली (1984), कश्मीर (1989), भागलपुर (1989), (मुंबई) (1992-93), गुजरात (2002) और कंधमाल, उड़ीसा (2008) जैसी घटनाएं दिखाती हैं कि भारत के धार्मिक अल्पसंख्यक चाहे वे मुसलमान हों, ईसाई हों, सिख हों या कश्मीरी पंडित, इन हिंसक दौरों में आक्रामक समूह-संगठन और पक्षपाती राज्य ने मिलकर उनके संवैधानिक अधिकार छीन लिये हैं। इसी प्रकार कर्नाटक में तमिल और महाराष्ट्र में बिहारी उन भाषाई अल्पसंख्यकों के उदाहरण हैं जो लक्षित हिंसा का शिकार रहे हैं। सिर्फ अल्पसंख्यक ही नहीं बल्कि सामाजिक रूप से कमजोर तबकों जैसे दलित और आदिवासियों को भी सामूहिक रूप से हिंसा के निशाने पर लिया जाता रहा है। मिसाल के लिये रमाबाई नगर पुलिस फायरिंग (1998) एवं खैरलांजी जनसंहार (2006) को लिया जा सकता है।

इन सभी घटनाओं में कुछ बातें एक जैसी हैं। असली हिंसा के काफ़ी पहले से संख्या के रूप में कम या सामाजिक रूप से कमजोर तबकों के ख़िलाफ़ भरपूर नफरत का प्रचार किया गया। हिंसा के वक्त पुलिस और प्रशासन ने या तो हिंसा का साथ दिया या खामोंश रहे। हिंसा के बाद पीड़ित लोग इन्साफ़, मुआवजे और पुनर्वास के लिये भटकते रहे लेकिन उन्हें राज्य की सामान्य मानवीय सहायता भी नहीं हासिल हो सकी। घटनाओं को दशकों बीत जाते हैं लेकिन इन्साफ नहीं मिलता।

सामाजिक पूर्वाग्रहों से लड़ाई तो एक लम्बे सामाजिक आन्दोलन की मार्फत ही हो सकती है लेकिन क्या कोई ऐसा तरीका नहीं निकाला जा सकता जिससे एक की हिंसा के दौरों के वक्त सरकारी मशीनरी को पक्षपातहीन और जवाबदेह बनाया जा सके और ऐसा न होने पर जिम्मेदार लोग़ों को कठघरे में खड़ा किया जा सके। क्या कोई ऐसा रास्ता नहीं हो सकता कि पीड़ितों के लिये इन्साफ की डगर आसान बनायी जा सके और उनकी उजड़ी हुई जिन्दगी को तत्काल कम से कम भौतिक रूप से बसाया जा सके। इन्हीं सवालों का जवाब देने की कोशिश है 'साम्प्रदायिक और लक्षित हिंसा (न्याय और पुनर्वास तक पहुंच) विधेयक 2011'।

विधेयक किसने तेयार किया है

विधेयक राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के सदस्यों ने गहरे सोच-विचार के बाद तैयार किया है। जैसा कि हम जानते हैं कि परिषद के सदस्य लंबे सामाजिक अनुभव से पक कर आये हैं। उन्होंने समाज के अलग-अलग क्षेत्रों में अपने काम से अपनी पहचान कायम की है। यही नहीं आज जब भूमंडलीकरण के दौर में राज्य अपनी सामाजिक जिम्मेदारी से पीछे भाग रहा है, ये परिषद के सदस्यों की पहलकदमी का ही नतीजा है कि बहुत से ऐसे कानून पास हुए हैं जिनसे राज्य के कल्याणकारी रूप को बचाया जा सके। भोजन का अधिकार, सूचना का अधिकार, रोजगार गारन्टी जैसे कानून इन्हीं सामाजिक रूप से सचेत लोग़ों की पहलकदमी की वजह से आ सके हैं।

विधेयक की कुछ खास बातें

यह विधेयक किसी भी राज्य में धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों तथा दलित और आदिवासियों के सदस्यों की संगठित और लक्षित साम्प्रदायिक हिंसा से रक्षा का वादा करता है।

अल्पसंख्यक या कमज़ोर समुदाय के ख़िलाफ़ नफरत भरे भाषण, बयानबाजी या लेखन की शुरूआत साम्प्रदायिक हिंसा के पहले हो जाती है। यही प्रचार असली हिंसा के लिये ईंधन मुहैया कराता है। हालॉकि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 153 ए के तहत इस तरह के भड़काऊ भाषण या लेखन के खिलाफ़ सज़ा तजवीज की गयी है लेकिन यह विधेयक नफरत भरे प्रचार को फिर से परिभाषित करता है। इसी तरह यह अन्य कई अपराधों की फिर से परिभाषा करता है जैसे-यन्त्रणा, लैंगिक हिंसा, संगठित एवं लक्षित साम्प्रदायिक हिंसा, कर्तव्य न निभाना और अपने से नीचे के अधिकारियों को आदेश देने में देर या कोताही। इस विधेयक में साम्प्रदायिक हिंसा के दौरान महिलाओं पर होने वाले जुल्म पर विशेष ध्यान दिया गया है।

आज से 15 साल पहले एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने कहा था कि 'कोई भी दंगा 24 घंटे से ज़्यादा नहीं चल सकता अगर राज्य उसे न चलाना चाहे।' राज्य के पक्षपातपूर्ण होने और हिंसा में हिस्सा लेने के बारे में यह एक भीतरी आदमी का ईमानदार बयान था। इस बयान के बाद की कई जांच कमेटियों और अधिकारियों के बयान से पुष्टि होती है। दंगों के वक्त पुलिस-प्रशासन की अनदेखी या पक्षपात से न केवल दंगा बढता चला जाता है बल्कि पुनर्वास भी असम्भव हो जाता है। नतीजा होता हैभारतीय लोकतंत्र और न्याय व्यवस्था में लोंगों का भरोसा उठने लगता है। भारतीय कानून के इतिहास में पहली बार ऊंचे पदों पर बैठे नौकरशाहों को भी 'आदेश देने में कोताही' के लिये दायरे में लिया गया है। अगर कहीं साम्प्रदायिक हिंसा की वारदात होती है तो उन नौकरशाहों पर भी मुकदमा चलाया जा सकता है जिनके नीचे आने वाले अधिकारियों-कर्मचारियों ने अपना कर्तव्य पालन नहीं किया और हिंसा कों भड़कने दिया। दूसरे शब्दों में बड़े अधिकारियों को भी हिंसा के भड़कने और फैलने के मामलों में जिम्मेदार बनाया गया है।

साम्प्रदायिक हिंसा के दौरान होने वाले नुकसान की भरपाई के लिये यह विधेयक

> इस बार दंगा बहुत हुआ
> बहुत हुई खून की बारिश
> अगले साल अच्छी होगी
> फसल मतदान की
>
> – गोरख पाण्डेय

मुआवजे और पुनर्वास के ठोस नियम बताता है। ताकि यह किसी सरकार के रहमोकरम पर निर्भर न रहे। यह नियम सभी के लिये हैं चाहे वह अल्पसंख्यक समुदाय का हो या बहुसंख्यक समुदाय का। विधेयक सरकार को वैधानिक रूप से मजबूर करता है कि वह किसी भी हालत में एक महीने के भीतर मुआवजे का भुगतान करे। मुआवजे के लिये न्यूनतम मानक भी तय किये गये हैं जैसे मृत्यु के लिये 15 लाख, बलात्कार के लिये 5 लाख, गंभीर रूप से घायल के लिये 2 लाख, मानसिक प्रताड़ना और अवसाद के होने, घर या व्यापार की हानि होने पर दिया जाने वाला मुआवजा महंगाई की दर के साथ बदला जायेगा। जबरन बेदखली, घर या व्यापार पर जबरन कब्जा हो जाने और अवसरों के खत्म होने पर भी मुआवजे की व्यवस्था है। नये कानून को लागू करने में सहायता के लिये राष्ट्रीय प्राधिकरण की स्थापना की जायेगी। इसका नाम होगा 'साम्प्रदायिक सद्भाव, न्याय और पुनर्वास के लिये राष्ट्रीय प्राधिकरण।' ऐसे ही प्राधिकरण राज्यों में भी बनाये जाऐंगे। भारतीय राज्य के संघात्मक ढांचे के मद्देनजर राष्ट्रीय प्राधिकरण राज्यों को बाध्य तो नहीं कर सकता लेकिन वह न्यायालय से राज्यों के लिए निर्देश प्राप्त कर सकता है। राष्ट्रीय प्राधिकरण में सात सदस्य होंगे जिसमें से 4 अल्पसंख्यक, महिला, दलित और आदिवासी तबके के होंगे।

विधेयक से कौन डरता है?

अभी विधेयक संसद के सामने पहुंचा भी नहीं कि इसके ख़िलाफ़ दुष्प्रचार शुरू हो गया। इस पर आरोप लगाये जाने लगे कि वह भारतीय समाज को बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक दो भागों में बांट देगा या यह अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा किये गये साम्प्रदायिक अपराधों की अनदेखी करता है। यह दुष्प्रचार उन्हीं के द्वारा किया जा रहा है जो अमतौर पर नफरत की राजनीति ही करते है। जिन्होंने संख्याबल या सामाजिक ताकत के मार्फत लोकतंत्र को अगवा करने की हमेशा कोशिश की है।

इसे समझने के लिए हमें प्रातिनिधिक लोकतंत्र की बारीकियों को समझना होगा। यह लोकतंत्र तभी अपने को सही लोकतंत्र के रूप में स्थापित कर सकता है जब यह अल्पसंख्यक या सामाजिक रूप से कमजोर तबकों की रक्षा एवं बराबरी का दावा कर सके। लेकिन इतिहास गवाह है कि चाहे वह कश्मीर के पंडित हों, गुजरात के मुसलमान हों, उड़ीसा के ईसाई हों, दिल्ली के सिख हों या खैरलांजी के दलित, हमेशा बहुसंख्या की ताकत से दबाये गये हैं। वे न केवल साम्प्रदायिक हिंसा के शिकार हुए है बल्कि उन्हें आज तक इन्साफ नहीं मिला। हालात और बिगड़े हुए महसूस होते हैं जब हम देखते हैं कि इन घटनाओं में राज्य के जिम्मेदार पदाधिकारी न केवल हिंसा को रोकने में नाकाम रहे बल्कि उन्होंने हिंसक गुटों का साथ भी दिया। उन्होंने पीड़ितों तक इन्साफ पहुंचने के रास्ते में भी बाधाएं खड़ी की। हद तो तब हो गयी जब चुनावों का इस्तेमाल साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण बढ़ाने के लिये किया गया। साम्प्रदायिक हिंसा को जायज ठहराने के लिये बहुमत के तर्क का इस्तेमाल किया गया। ऐसे माहौल में क्या जरूरी नहीं हो जाता कि लोकतंत्र के बहुमत वाले तर्क को कानून और संविधान के बराबरी वाले तर्क से ठीक किया जाये। अगर भीड़ किसी इन्सान को घेर कर मार देती है तो हम यह तर्क नहीं दे सकते कि भीड़ इसलिये हत्यारी नहीं है चूकिं वह बहुमत में है। विधेयक हमारे लोकतंत्र को एक जरूरी संतुलन देता है। वह समाज को अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक में बांटता नहीं बल्कि पहले से ही बंटे हुए समाज में संवैधानिक बराबरी और कानून के शासन का पुल बांधता है।

यह विधेयक बहुसंख्यकों के विरुद्ध नहीं है बल्कि यह राज्य की मशीनरी को अल्पसंख्यकों और सामाजिक रूप से कमजोर तबकों के लिये संवेदनशील और जवाबदेह बनाने की पहल है। यह अल्पसंख्यकों और सामाजिक रूप से कमजोर तबके के लिये विशेष चिंता दिखाता है क्योंकि इन तबकों की सामाजिक पहचान की वजह से ही उन्हें सामूहिक हिंसा का शिकार बनाया जाता है। यह इस बात की ताईद करता है कि वही लोकतंत्र सफल हो सकता जिसमें इन्साफ और बराबरी सामाजिक ताकत के हिसाब से नहीं बल्कि नागरिक होने के नाते मिलते है। इस विधेयक के खिलाफ़ झूठा प्रचार करने वाले वही हैं जिन्हें हमारी तहजीब, लोकतंत्र और संविधान में विश्वास नहीं।

हम क्या करें?

यह विधेयक बनने के बाद ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है। इस पर बहस हो और कानून बन सके इसके लिए विभिन्न दलों में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी है। एक राष्ट्रीय अभियान शुरू किया गया है ताकि विधेयक को संसद में रखा जाय और इस पर पूरे देश में चर्चा हो सके।

हमारा संविधान कहता है कि राज्य किसी भी व्यक्ति से धर्म, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता। साथ ही संविधान हर व्यक्ति की कानून के सामने समानता का भी वादा करता है। लेकिन हालात इसके उलट है। खासकर साम्प्रदायिक हिंसा के मामलों में राज्य व उसके अमले न केवल भेदभाव करते पाये जा रहे हैं बल्कि खुलकर अत्याचारियों का साथ दे रहे हैं। ऐसे में संविधान, लोकतंत्र और साझा संस्कृति के उसूलों में यकीन करने वाले सभी व्यक्तियों, संगठनों और समूहों की यह जिम्मेदारी बनती है कि साम्प्रदायिक एवं सामाजिक भेदभाव के लिए आगे बढ़ें। साम्प्रदायिक और लक्षित हिंसा (न्याय और पुर्नवास तक पहुंच) विधेयक 2011 को कानून बनाने की मुहिम में शामिल हों।

(प्रस्तुति-जागृत समाज इलाहाबाद)

प्रोफ़ेसर सांईबाबा की गिरफ़्तारी का मतलब

दिल्ली विश्वविद्यालय के राम लाल आनन्द कॉलेज में अंग्रेजी के प्रोफ़ेसर श्री जी. एन सांईबाबा को महाराष्ट्र और दिल्ली पुलिस की संयुक्त टीम ने पिछले हफ़्ते गिरफ़्तार कर लिया। श्री सांईबाबा उस वक्त अपने घर से महज कुछ सौ मीटर की दूरी पर थे और गाड़ी से अपने घर जा रहे थे। उनके ड्राईवर के अनुसार पुलिस उन दोनों की आंखों पर पट्टी बांधकर थाने ले गयी। जहां से ड्राइवर को घर भेज दिया गया और प्रोफ़ेसर साहब को पुलिस विमान से महाराष्ट्र ले गयी। वहां उन्हें गढ़चिरौली में अदालत में पेश किया गया और जज ने उन्हें 14 दिन की न्यायिक हिरासत में भेज दिया क्योंकि पुलिस ने उन्हें पुलिस रिमाण्ड पर लेने की मांग नहीं की थी।

पुलिस के अनुसार वह प्रोफ़ेसर सांईबाबा पर पिछले 12 साल से नज़र रखे हुए थी। उनपर इस तरह की जबरदस्त निगरानी का कारण उनका अलकायदा या सी.आई. ए से सम्बन्ध रखना नहीं था बल्कि उनका वाम विचारधारा से सहानुभुति था। पुलिस ने उनपर माओवादियों से सम्बन्ध रखने का आरोप लगाया है। सबसे पहले पुलिस ने पिछले साल सितम्बर में उनके घर पर दस्तक दी थी जब वह चोरी का सामान बरामद करने के बहाने आई थी लेकिन चोरी का सामान तो घर पर कुछ नहीं मिला अलबत्ता पुलिस उनका लैपटाप और हार्ड-ड्राइव जरूर उठा ले गई जो आज तक उन्हें लौटाया नहीं गया है। पुलिस की मानें तो उन्हें इस लैपटाप से 'महत्त्वपूर्ण सुराग' मिला है कि प्रोफ़ेसर साईबाबा भारतीय और विदेशी ख्याति प्राप्त लोग़ों को लेकर एक अन्तर्राष्ट्रीय जन अदालत गठित करने जा रहे थे जिनमें पुलिस और माओवादियों की लड़ाई के बीच पिस रहे लोग़ों की सुनवाई होनी थी। अगर इस तरह की जन सुनवाई भी अपराध मानी जाने लगी तो हमें जान लेना चाहिए कि हम अंग्रेज़ों के राज से भी ज्यादा अत्याचारी व्यवस्था में जी रहे हैं।

इस घटना ने कुछ महत्त्वपूर्ण सवाल उठाये हैं जो हर न्यायप्रिय भारतीय नागरिक के मन को उद्वेलित किये हुये हैं। पहला सवाल तो यह है कि दिल्ली यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर और 'ग्वेयर हाल' के वार्डन यानी इस होस्टल में रहने वाले सैंकड़ों छात्रों की जिम्मेदारी संभालने वाले एक व्यक्ति को क्या एक सामान्य चोर उचक्के की तरह उठाकर जेल में बन्द किया जा सकता है क्योंकि वे एक अलग राजनैतिक विचारधारा से सम्बन्ध रखते हैं। क्या इतने सम्माननीय एक व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध किसी अपराध में लिप्त होने के ठोस सबूत ना हों और पुलिस को जिनसे ना कुछ बरामद करना है ना ही पूछताछ करनी हो, उसे गिरफ्तार करने की जरूरत थी? जब डेरा सच्चा सौदा के बाबा को, जो हत्या और बलात्कार के केस में आरोपी थे, वीडियो कान्फ्रेंसिंग के द्वारा सिरसा से ही अम्बाला की अदालत में पेश किया जा सकता था तो प्रोफेसर सांईबाबा को क्यों नहीं? या ये सुविधा सिर्फ़ हत्या और बलात्कार के आरोपियों के लिये है। गरीब जनता की लड़ाई लड़ने वालों के लिये नहीं। सबसे ज़्यादा दुख इस घटना के प्रति ज्ञान और विज्ञान के केन्द्र दिल्ली विश्वविद्यालय के व्यवहार को लेकर है। जिन्होंने बिना इस मामले के गुण दोषों पर विचार किये, लकीर के फकीर और सरकार की गुलामी से बन्धे एक सरकारी बाबू की तरह, प्रोफेसर सांइबाबा की गिरफ़्तारी पर उन्हें सेवा से निलम्बित कर दिया। सबसे पहले तो उन्हे अपने एक प्रोफ़ेसर की इस तरह से और बिना उन्हें सूचित किये गिरफ़्तारी पर कड़ा विरोध जताना चाहिए था। दूसरी तरफ उनको बिना पुलिस के अनर्गल आरोपों और छानबीन को स्वीकार करते हुये, गुण-दोषों के आधार पर मामले पर विचार करना चाहिये था। बल्कि अगर विभागीय छानबीन में यूनिवर्सिटी को लगता कि प्रोफेसर पर आरोप मनगढन्त है तो बज़ाय उन्हें सस्पेन्ड करने के यूनिवर्सिटी को उनका मुकदमा लड़ना चाहिए था। लेकिन हमेशा सरकारी अनुग्रह की आशा में पलक-पांवड़े बिछाये बैठे इन लोग़ों की रीढ शायद इतनी मजबूत नहीं है कि विचारों की स्वतंत्रता के अधिकार की रक्षा के लिये लड़े।

प्रोफ़ेसर साईबाबा ब्हीलचेयर के बिना नहीं चल सकते और हाई बल्ड प्रैशर आदि बीमारियों से भी पीड़ित हैं। उनके भाग जाने का कोई खतरा नहीं है। महीनों के पूछताछ और तहकीकात के बाद भी पुलिस को किसी अपराध में उनकी लिप्तता के कोई सबूत नहीं मिले । फ़िर भी उनकी गिरफ़्तारी दिखाती है कि ऐसी सरकार विचारों से कितना डरती है। यह गिरफ़्तारी डा. विनायक सेन की गिरफ़्तारी की भी याद दिलाती है। साथ ही सी.पी.आई. और सी. पी. आई. एम जैसी गरीब जनता की हितैषी होने का दम भरने वाली पार्टियों की चुप्पी भी बड़ी अखरती है। उनको याद रखना चाहिए कि आगे जो 'अच्छे दिन आने वाले हैं' उसमें उनके उपर इससे भी बड़े हमले होनेवाले हैं। या फिर ये मानें कि उन्होंने भी 'अच्छे दिन' लाने वालों के आगे दुम हिलाने का निर्णय कर लिया है।

-अजातशत्रु

मई दिवस के अवसर पर

मज़दूर वर्ग की व्यापक संग्रामी एकता का आह्वान

1 मई, फ़रीदाबाद, इंकलाबी मज़दूर केन्द्र, ऑल वीनस इंडस्ट्रियल वर्कर्स यूनियन, व शील पैकेजिंग वर्कर्स यूनियन के द्वारा संयुक्त रूप से मई दिवस सभा का आयोजन सेक्टर 24 स्थित वीनस पार्क में किया गया।

सभा की शुरूआत मई दिवस के शहीदों को श्रद्धांजली देने व क्रांतिकारी नारों के साथ हुई।

सभा को संबोधित करते हुए आल वीनस इंडस्ट्रियल वर्कर्स यूनियन के वरिष्ठ नेता वीरेन्द्र सिंह तोमर ने कहा कि मज़दूर वर्ग की आज जरूरत मज़दूरों को आर्थिक संघर्षों व फैक्ट्रीगत सोच से ऊपर उठकर राजनीतिक तौर पर जागरूक होने की है। उन्होंने कहा कि 8 घंटे कार्य दिवस की जो लड़ाई मज़दूरों ने एक शताब्दी से पहले जीत ली थी लेकिन आज फ़िर मज़दूरों के हालात फिर वहीं पहुंच गए हैं । ऐसे में जरूरत नए सिरे से मज़दूरों के संघर्ष खड़े करने की है।

सभा को संबोधित करते हुए सनफ्लैग हास्पीटल एम्पलायज यूनियन के महासचिव महेन्द्र पाठक ने कहा कि मज़दूर वर्ग को पिछड़ी सोच व मान्यताओं से छुटकारा पाना होगा। पूंजी की गुलामी से मुक्ति के विचार से खुद को लैस करना होगा तभी मज़दूर आन्दोलन को आगे बढ़ाया जा सकता है।

सभा को संबोधित करते हुए नेपाली एकता मंच के मोहन राउत ने कहा कि शोषण व अन्याय के खात्मे के लिए मज़दूर वर्ग के आन्दोलन को आगे बढ़ाना ही मई दिवस के शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

इसी क्रम में सभा को सम्बोधित करते हुए मज़दूर मोर्चा के सम्पादक सतीश कुमार ने कहा कि आज पूरी सरकारी मशीनरी मज़दूरों के ख़िलाफ़ एकजुट हैं। श्रम विभाग दलालों के अड्डे बन गए हैं। ऐसे में मज़दूर वर्ग के आन्दोलन को कानूनी दायरे में रहकर जीत पाना असंभव बन गया है। बड़े पैमाने पर मज़दूरों की संग्रामी एकता व बड़े पैमाने के मज़दूर संघर्षों के बल पर ही मज़दूर आन्दोलन को आगे बढ़ाया जा सकता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि मज़दूरों का मुकाबला आज पूंजीपतियों से ही नहीं बल्कि उनके संरक्षक शासन-प्रशासन, श्रम विभाग व पूरे सरकारी तंत्र से है। सभा के क्रम को आगे बढ़ाते हुए इंकलाबी मज़दूर केन्द्र के नागेन्द्र ने कहा कि मज़दूर वर्ग को अपने बीच से जाति, धर्म, क्षेत्र, लिंग व स्थायी कैजुअल ठेका आदि का विभाजन खत्म कर एक वर्ग के रूप में सच्ची एकजुटता कायम करनी होगी तथा पूंजीवादी व्यवस्था के स्थान पर समाजवादी व्यवस्था के लिए संघर्ष को आगे बढाना होगा।

सभा को अधिवक्ता नावेद खान, राष्ट्रीय पिछड़ा पार्टी के अध्यक्ष फूल महेश, रामजी जयप्रकाश आदि ने भी संबोधित किया। इंकलाबी मज़दूर केन्द्र की सांस्कृतिक टोली द्वारा ''बोल मजूरे हल्ला बोल'' व ''लाल लाल झंडा है जान से भी प्यारा है'' आदि क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किए गए।

सभा का समापन करते हुए इंकलाबी मज़दूर केन्द्र के नेता संजय मौर्या ने मज़दूर वर्ग को सबसे क्रान्तिकारी वर्ग और एक शोषण विहीन समाज का निर्माण करने वाला युग निर्माता बताते हुए पूंजी की निरंकुश लूट व शोषण के ख़िलाफ़ मज़दूरों की संग्रामी एकता का आह्वान किया।

मई दिवस के शहीदों को याद कर उन्हें 'लाल सलाम' पेश करते हुए तथा पूंजीवादी व्यवस्था के स्थान पर समाजवाद के लिए संघर्ष तेज करने के आह्वान के साथ उन्होंने मई दिवस कार्यक्रम का समापन किया।

दुकानदार पर गुंडों का हमला, दुकानदार के विरुद्ध ही कार्यवाही

फ़रीदाबाद (म.मो.) दिनांक 3 मई शाम के करीब 6 बजे ज़ेन एस्टीलों कार में सवार 3 लोग़ों ने तिकोना पार्क स्थित गौरव टायर के एक हिस्से में बनी खान एक्सेल नामक दुकान के मालिक अंगुर खान से झगड़ा व मारपीट की। हमलावर 4 एक्सेल उठा कर गांड़ी में डालकर भागने लगे तो गौरव टायर के मालिक सुरजन खत्री व उनके पड़ोसी दुकानदारों ने उन्हें घेर कर रोकना चाहा। इस पर तो सुरजन खत्री को भी पीट दिया। इससे भड़के पड़ोसी दुकानदारों का उग्र रूप देख कर तीनों बदमाश अपनी गाड़ी वहीं छोड़ कर भागने लगे तो एक को भीड़ ने पकड़ लिया। सौ नम्बर पर फ़ोन किया तो पता लगा कि पी सी आर जिप्सी किसी अन्य ड्यूटी में व्यस्त है; सर्वविदित है कि पुलिस जिप्सियों के जिम्मे सबसे बड़ी ड्यूटी वी आई पी लोग़ों की अगवानी करना है।

खैर, करीब आधे घंटे बाद थाना कोतवाली की गाड़ी मौका-ए-वारदात पर पहुंची जो पकड़े हुए लड़के व उसकी कार को लेकर पुलिस चौकी नम्बर 2 में पहुंचा आई। इनके साथ तिकोना पार्क मार्केट के 20-25 दुकानदार भी चौकी पहुंचे। वहां मौजूद सतीश नामक पुलिस कर्मी को सारे हालात बयान किये गये। लेकिन पुलिस ने कोई रपट तक दर्ज नहीं की और तो और सुरजन खत्री द्वारा लिखित दरखास्त की रसीद तक देने से इन्कार कर दिया। सुरजन को लगी चोटों का मेडिकल भी पुलिस ने नहीं कराया।

करीब डेढ-दो घंटे तक जब दुकानदार चौकी में पुलिस कार्यवाही के लिये जद्दोजहद करते रहे तो इसी बीच मौका-ए-वारदात से फ़रार दोनों बदमाश भी अपना पूरा सिफ़ारिशी जुगाड़ फ़िट करके चौकी पहुंच गये और थानेदार की बगल वाली कुर्सी पर आकर बैठ गये। थानेदार साहब ने उन्हें पहले पानी पिलाया और फ़िर चाय पिलाई इसके बाद थानेदार ने शिकायतकर्ता सुरजन पर धौंस दिखाते हुए कहा कि वह दरखास्त किससे लिखवा कर लाया है? दरखास्त तो हम खुद लिखवाते हैं। तुमने अपनी दरखास्त में यह क्यों नहीं लिखा कि तुमने भी इन बेचारे 'शरीफ़' लड़कों को पीटा है? सुरजन ने कहा कि दरखास्त उसने खुद लिखी है और जो सच्चाई है लिख दी है। इसके बाद थानेदार ने एक दरखास्त आरोपियों से भी शिकायतकर्ता के विरुद्ध लिखवा ली। जाहिर है यह सब शिकायतकर्ता पर दबाव बना कर समझौता कराने के लिये ही पुलिस ने किया है।

पुलिस की यही 'कमाऊ' कार्यशैली है जिसके चलते गुंडा तत्वों के हौंसले बढते जाते हैं और आये दिन गुंडागर्दी व लूटपाट की घटनायें बढती जा रही हैं। पिछले दिनों पुलिस द्वारा इसी क्षेत्र में निकाले गये फ्लैग मार्च की हकीकत भी यही थी कि वह गुंडों को नहीं केवल शरीफ़ लोग़ों को डराने के लिय था।

उक्त घटना बाबत चौकी इन्चार्य जगबीर सिंह से इस संवाददाता द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि धारा 107/151के तहत कार्यवाही कर दी गयी है तथा शेष कार्यवाही तफ़्तीश के बाद की जायेगी हो सकता है कि शिकायतकर्ता के खिलाफ़ ही मुकदमा दर्ज करना पड़े।

वैसे भी हमलावरों के ख़िलाफ़ मुकदमा दर्ज हो ना हो लेकिन शिकायतकर्ता के विरुद्ध तो जरूर होना चाहिये क्योंकि उसने पुलिस में शिकायत दर्ज कराने का जो गुनाह किया है उसकी सज़ा तो उसे मिलनी ही चाहिये ताकि दोबारा कभी शिकायत करने की जुर्रत ना करे। फ़िर पुलिस की कमाई भी हमलावरों से ही होनी है।

घरेलू कामों का जिम्मा महिलाओं पर क्यों ?

आदर्श गृहणी का विचार भारतीय परिवेश में व्याप्त मिथक को जन्म देता है। यह मिथक महिलाओं को गृहलक्ष्मी, अन्नपूर्णा आदि की अपाधियां देकर न केवल महिलाओं के भीतर इस भ्रमक विचार को पैदा कर उनकी आजादी को प्रतिबंधित करता है बल्कि जो महिलायें अपनी जिंदगी स्वयं जीना चाहती है और समाज में संघर्ष कर रही है, उन्हें कुंठित करते हुए उनकी पहलकदमी को रोकता भी है।

इनमें से कुछ आम प्रचलित मिथक ये भी हैं-

1. कुछ घरेलू काम जरूरी है, जिनके बिना दुनिया का चलन रुक सकता है।
2. उन कामों को बेहतरीन ढंग से करना भी उतना ही जरूरी है।
3. उन कामों को वे खुद अपने बेहतरीन ढंग से करे। यह भी उतना ही जरूरी है।
4. वे काम सिर्फ वे ही कर सकती हैं दूसरा कोई नहीं
5. चाहे कुछ भी हो, वे काम वे खुद ही करेंगी वरना घर के लोग नाराज हो जायेंगे।

वे कुछ जरूरी काम जिन्हें बेहतरीन ढंग से केवल घर की महिला ही कर सकती है। जिसके न होने पर समाज रुक जायेगा घर के बाकी सदस्य नाराज हो जायेंगे क्या है?

ये हैं। घर की सफाई, साज-सज्जा झाड़ू पौंछा, बर्तन मांजना, कपड़े धोना, खाना बनाना, बच्चों की टॉयलेट साफ करना, दुध पिलाना आदि-आदि। वास्तव में क्या ये इतने जरूरी काम हैं जिन्हें घर की महिला न करे तो सब कुछ बर्बाद हो जायेगा? ये सारे गृह कार्य करने का कार्यभार महिलाओं के कंधों पर डालने का विचार कितना झूठा है इसको हम दो नजरियों से देख सकते हैं। पहला-देश की शासक वर्गीय एक तिहाई महिलायें उपरोक्त सभी जरूरी गृह कार्य स्वयं नहीं करती। उनके घर पर सफाई, कपड़े धुलाई, बच्चों की देखभाल, खाना पकाने घर की चौकीदारी आदि समस्त कार्यों के लिए महिला पुरुष दोनों तरह के कर्मचारी लगे होते हैं। फिर भी उनका घर बेहतर तरीके से चलता है। और वे अपनी जिंदगी भी शान से जीती है। समाज में शासकीय भूमिका भी बखूबी निभाती है। चाहे वे राजनेता हों या प्रबंधक सोनिया गांधी, इदिरा नुई, मायावती या फिल्मी हस्तियां उन्हें अपने गृह कार्य के लिए ज्यादा समय घर पर नहीं रहना होता। दूसरा-सर्वहारा वर्ग की महिलायें, वे सभी श्रमिक महिलायें जिन्हें अपनी जिन्दगी की निजी जरूरतों को पूरा करने के लिए घर से बाहर जाकर 10-12 घंटे मज़दूरी करनी पड़ती है। ऐसे में घर को उन्हें छोड़ना पड़ता है। घर का काम उन्हें बाकी बचे समय में करना पडता है या फिर पति या घर के अन्य बुजुर्ग सदस्य उसमें मदद करते हैं। रोजी-रोटी का संकट उन्हें एक तरह से घरेलू दासता से 'मुक्ति' दिलाता है।

आम मध्यमवर्गीय व अन्य निम्न मध्यम वर्गीय महिलाओं के लिए ये घरेलू कार्य सर्वोपरि बन जाने के साथ-साथ घर की चारदीवारी उनके लिए जिन्दगी भर का कैदखाना बन जाती है। घर खर्च के लिय उन्हें बाहर नहीं जाना पड़ता तथा आमदनी का स्तर उन्हें अलग से कुछ करने नहीं देता।

अत: घरेलू कार्यों का जिम्मा उनके कंधों पर आ जाता है और ये इतने सूक्ष्म रूप में मानसिक स्तर तक कायम हो जाता है कि उन्हें स्वयं यह लगने लगता है कि घर के ये जरूरी कार्य वे ही बेहतर तरीके से कर सकती है पति का बाहर काम करना और घर संभालना महिला की जिम्मेदारी। इस तरह जीवन के समस्त बेहतरीन क्षण वह घर के कैद में ही जीती है। उसमें चाहे कितनी ही योग्यता हो या पढ़ी-लिखी हो घर की चारदीवारी के भीतर जीना नियति बन जाती है और इस विचार को पालित-पोषित करने में शासक वर्गीय मीडिया प्रचार तंत्र भी भूमिका निभाता है। वह अपनी पत्रिकाये, विज्ञापनों, फिल्मों व धारावाहिकों के द्वारा खूब सजी-धजी गृहणियों को महिमा मंडित करता है। घर की जिम्मेदारी का एहसास कराने के लिए ही तीज-त्यौहारों को स्पेशल ब्रांडेड बना कर महिलाओं की अलग से जीवन जीने का लालसा को कुंठित करता है। इसका फायदा भी उसे दो तरह से मिलता है एक तो उसका उत्पाद बिक जाता है।

मोईली का खेल-गैस फालतू बिजलीघर फेल

दिल्ली (म.मो.) गैस अथॉरिटी ऑफ इन्डिया यानि गेल ने सरकार को सूचित किया है कि एन.टी.पी.सी. द्वारा गैस नहीं खरीदने के कारण उसके पास गैस की इतनी ज़्यादा मात्रा हो गई है कि वो उसका भण्डारण करने में असमर्थ है। उधर एन.टी.पी.सी जो एक सरकारी कम्पनी है और गैस और कोयला आधारित बिजलीघर चलाती है उसने भी सरकार से कहा है कि वो बढे हुए रेट पर गैस लेने में असमर्थ है क्योंकि इससे उसके बिजलीघरों द्वारा उत्पादित बिजली इतनी महंगी हो जायेगी कि उसे कोई खरीदेगा नहीं। एक मोटे अनुमान के अनुसार गेल के पास दो अरब धन मीटर फालतू गैस जमा हो जाने की सम्भावना है। यानि एक तरफ तो हम गैस की अधिकता से जूझ रहे होंगे तो दूसरी तरफ बिजली की भारी कमी से। और सरकारी यानि हमारे पैसे से बने गैस आधारित बिजलीघर बेकार पड़े जंग खा रहे होंगे। बहुत जल्द यही समस्या हमें खाद कारखानों में भी झेलनी पड़ेगी। यह सब हमारे तेल मंत्री मोइली जी की करामात है जो रिलायन्स को फायदा पहुंचाने और अपनी जेबे भरने के लिये गैस के दाम चार से आठ डॉलर प्रति यूनिट कर गये। वो अपनी और अम्बानी की तो जेबें भर गये लेकिन हमारी जेबों को बिल्कुल फ़ाड़ गये। लेकिन आने वाले समय में जनता क्या करेगी जब मोईली से भी बड़ा डाकू सत्ता सम्भालेगा, जो पहले ही गैस के दाम आठ की बजाय सोलह डॉलर प्रति यूनिट करने की वकालत कर रहा हो!

मोदी के समय में माफी

-विकास नारायण राय

मोदी के गुजरात माडल का एक घोर असहज करनेवाला सामाजिक पक्ष विहिप के तोगड़िया ने मौजूदा चुनावी दौर में दिखाया। एक वीडिओ में वह मोहल्ले में नए बसे मुस्लिम परिवार को अपमानित कर बाहर खदेड़ने के गुर मध्यवर्गीय हिन्दू स्त्री-पुरुषों के समूह के साथ चटखारे लेकर साझा करता है। साम्प्रदायिक दंगों की आंकड़ेबाजी में इस पक्ष की प्राय: अनदेखी हो जाती है कि गुजरात में साम्प्रदायिक आधार पर समाज विभाजन का आक्रामक दौर थमा नहीं है। गोधरा काण्ड के बाद वहां के एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के साथ कामकाजी भोजन की एक दोपहर मुझे आज तक याद है जिसमें स्थानीय पुलिस इंस्पेक्टर ने बिना पूछे बार-बार हमें आश्वस्त करना जरूरी समझा था कि चिकन-करी किसी मुस्लिम स्रोत से नहीं है और, लिहाजा, 'सुरक्षित' है।

2013 के मुजफ्फरनगर दंगे जैसे प्रकरण मुस्लिम समाज को चुनाव में विकास के मुकाबले सुरक्षा को प्राथमिकता देते रहने पर विवश रखते हैं। बिहार में विकास-विरोधी लालू यादव शासन की बेहद अक्षम एवं भ्रष्ट पारी मुस्लिम मतों के दम पर इसलिए ही चलती रही। अक्टूबर 1990 में अडवाणी की अयोध्या रथ-यात्रा, जो देश भर में मुसलमानों के लिए आतंक का पर्याय बन चुकी थी, को रोककर लालू ने सांप्रदायिक सुरक्षा का जो सिक्का जमाया वह अगले पंद्रह वर्ष तक कायम भी रखा। संघी मोदी के लिए, लाख संविधान के शासन का दावा करने के बावजूद, लालू बनना तो संभव नहीं। हां, भाजपा इस पहेली को तोड़ना चाहेगी कि 1984 के सिख दंगे कांग्रेस और गांधी परिवार के लिए उसी तरह चुनावी जवाबदेही का बायस नहीं बनते जैसे 2002 के गुजरात दंगे भाजपा और मोदी के लिए होते हैं।

आखिरकार दोनों अवसरों पर अल्पसंख्यक समुदाय को निशाना बनानेवाली हिंसा की प्रकृति और बर्बरता एक जैसी ही तो थी। दोनों ही अवसरों पर सत्ताधारी दल के लोगों ने सरकार के साए तले खूनी तांडव किया था। यहां तक कि 1984 में हिंसा को रोकने में राज्य की निष्क्रियता को, 2002 में राज्य की हिंसा में सक्रिय भागीदारी का रिहर्सल भी कहा जा सकता है। दोनों में कानून भी अपना काम कर ही रहा है। फिर क्यों न भाजपा को भी चुनाव-दर-चुनाव दंगे की जवाबदेही से मुक्ति मिले जैसे कांग्रेस को मिल चुकी है।

तो भी, हिंदुत्व की विचारधारा में कैद भाजपा और मोदी के लिए गुजरात 'पोग्राम' को लेकर माफी मांगना संगत नहीं हो सका है। लोकप्रिय प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी चाहने पर भी भाजपा की अंदरूनी राजनीति में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से बड़े नहीं हो सके थे। संघ की भाजपा पर पकड़ का असर था कि 2004 के लोकसभा चुनाव में पार्टी की अप्रत्याशित हार के कारणों पर वाजपेयी आधा सच ही बोल पाए, कि गुजरात दंगों की खासी भूमिका रही पार्टी को हराने में। पूरा सच बोलना संभव होता तो वे यह भी जोड़ते कि प्रधानमन्त्री के नाते यदि उन्होंने राजधर्म न निभानेवाली मोदी सरकार को बर्खास्त कर दिया होता तो मुस्लिम मतों का कांग्रेस के पक्ष में व्यापक ध्रुवीकरण न होता और भाजपा शर्तिया जीतती। आज, 2014 की मोदी मुहिम में भाजपा जिस मुस्लिम स्वीकार्यता की जोड़-तोड़ में लगी है, दस वर्ष पूर्व वह वाजपेयी की झोली में गिरने के कगार पर थी।

इसे विडम्बना भी कह सकते हैं कि विहिप के घृणा-दूत तोगड़िया ने साम्प्रदायिक विष-वमन से मोदी को निर्णय के ऐन वाजपेयीवाले दोराहे पर ही लाकर खड़ा कर दिया है। चुनाव आयोग के निर्देश पर तोगड़िया के विरुद्ध गुजरात पुलिस ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कर ली है। अब गेंद, संकुचित साम्प्रदायिक छवि से बाहर आने को लालायित मोदी के पाले में है। लेकिन संघ, हिंदुत्व और चुनावी संभावनाओं के बीच संतुलन बैठाने का जो जटिल खेल वाजपेयी नहीं खेल सके थे, क्या मोदी खेल पायेंगे? परिस्थितियां इस लिहाज से भी समान हैं कि आज के मोदी के पास तोगड़िया को नकारने की उसी तरह की चुनावी वजहें हैं जो तब के मोदी को नापसंद करनेवाले वाजपेयी के पास हुआ करती थीं।

कहना होगा कि जान-बूझकर नरेन्द्रभाई ने गुजरात दंगों को लेकर माफी मांगने के विकल्प से दो टूक किनारा कर लिया है। प्रधानमंत्री पद की

दावेदारी में उतरने के बाद से यह विकल्प उन्हें घूर रहा होगा। इसके बजाय उन्होंने चुनौती दे डाली कि दंगों के लिए कसूरवार पाए जाने पर बेशक चौराहे पर उन्हें फांसी दे दी जाय। यह एक मुसोलिनी जैसा हश्र उनके हाथ में नहीं है; इतिहास के भी हाथ में नहीं है। पर वे कांग्रेस से अलग जरूर दिखना चाहते हैं, जिसके नेताओं ने वर्षों तक चुप्पी के बाद अंतत: 1984 के सिख दंगों के लिए माफी मांग ली थी। कानूनी उलझाव को न्योता देने के आलावा मोदी के माफी मांगने से हिंदुत्व के कट्टर समर्थकों का उनसे उखड़ने का भी खतरा रहेगा, जो फिलहाल उनकी चुनावी राजनीति को गंवारा नहीं हो सकता। चुनावी दौर में 'माफी' को देश का मुस्लिम नेतृत्व पचा पायेगा, यह भी अनिश्चित है।

गुजरात के नियोजित मुस्लिम संहार पर मोदी की अपनी भूमिका को लेकर पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा गया है। बेशक, दंगों से निपटने में राज्य का पुलिस-प्रशासन, छुटपुट अपवादों को छोड़कर, पूरी तरह असफल सिद्ध हुआ था। पर स्वयं मोदी की नीयत क्या थी, यह कैसे तय करें? उनके दाहिने हाथ अमित शाह ने अब तर्क दिया है कि गोधरा ट्रेन कांड से भावनाएं इस कदर भड़की हुई थीं कि प्रशासन के लिए स्थिति पर एकदम नियंत्रण पाना संभव नहीं था। निश्चित ही दंगों में हिंसा की व्यापकता अभूतपूर्व रही थी। कागजों में सेना और पड़ोसी राज्यों से मदद भी मांगी गयी। लेकिन स्थिति से निपटने में न राज्य का प्रशासन उतावला दिखा और न राजनीतिक नेतृत्व ने कानून-व्यवस्था की मशीनरी पर जवाबदेही का अंकुश कसने की अधीरता दिखायी।

राज्य के जिन चंद पुलिस अधिकारियों ने दंगाइयों के विरुद्ध कार्यवाही का साहस दिखाया उन्हें तबादलों व जांचों से प्रताड़ित किया गया। दूसरी ओर जिनके अधिकारक्षेत्र में सार्वजनिक तौर पर बर्बरतम हिंसक घटनाएं भी हुईं, उन्हें मोदी शासन ने अभयदान देकर पूर्ववत कानून-व्यवस्था के पदों पर बनाए रखा। इनमें से कई स्थानों पर पुलिस ने दंगाइयों पर अंतत: गोलियां भी चलायीं पर दो-तीन दिन तक हिंसा निर्बाध चलने के बाद। दंगा-स्थलों से पुलिस का नदारद रहना या वहां समय पर न पहुँचना, मुकदमे दर्ज न करना, गिरफ्तारियां न करना, अनुसंधान बंद कर देना अपराधियों का जमानत पर छूटना, पीड़ितों व गवाहों को डरा-धमकाकर या प्रलोभन से तोड़ना, शासन के आम हथकंडे रहे। वर्षों बाद जब नागरिक समूहों की पहल पर सर्वोच्च न्यायालय ने मोदी सरकार से हिसाब-किताब मांगना शुरू किया तब जाकर अनुसन्धानों ने गति पकड़ी, गिरफ्तारियां हुईं और अदालतों में ट्रायल आगे बढ़ सके।

प्रधानमंत्री वाजपेयी की तत्कालीन गोधरा/गुजरात यात्राओं में विशेष सुरक्षा दल की ओर से समन्वय करने के दौरान मैने पाया कि राज्य के नौसिखिया मुख्यमंत्री ने साम्प्रदायिक आधार पर पुलिस में तैनाती की बाकायदा मुहिम चला रखी थी। गोधरा में कार-सेवकों की ट्रेन के दो डब्बों को अचानक जलाने से हुई हृदयविदारक मौतों को लेकर राज्य-व्यापी हिंसा फूटने पर गुजरात पुलिस में कानून-व्यवस्था का एक भी पद ऐसा नहीं था जिस पर कोई मुसलमान तैनात रहने दिया गया हो। स्पष्ट ही यह कवायद 2002 के अंत में होनेवाले विधानसभा चुनाव की सामरिक तैयारी का हिस्सा थी। उस समय तक मोदी और तोगड़िया एक ही थैली के चट्टे-बट्टे होते थे। साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के साए में हुए चुनाव ने मोदी का मुख्यमंत्रित्व पक्का कर दिया। अमित शाह को गृह राज्य मंत्री बनाकर गुजरात पुलिस के मोदीकरण, दंगों पर नियोजित लीपापोती और राजनीतिक मुठभेड़ों/निगरानियों की मुहिम को शह दी गयी।

मोदी के आक्रामक साम्प्रदायिक एजेंडे से वाजपेयी की समन्वयकारी राजनीतिक छवि का तालमेल संभव नहीं था। वे व्यक्तिगत स्तर पर भी मोदी से दूर दिखना चाहते थे। हिमाचल के दौरों में, जहां वाजपेयी छुट्टियां मनाने के शौकीन थे, हिदायत होती कि प्रदेश का प्रभारी महासचिव होने के बावजूद मोदी को प्रधानमंत्री की कार या हेलीकाप्टर में जगह न दी जाय। स्वाभाविक था कि वाजपेयी चाहते कि मोदी के पूर्ववर्ती केशूभाई पटेल, जो दुर्भाग्य से एक वर्ष पहले के भयानक तबाहीवाले भुज भूकंप में अपनी साख खो चुके थे, ही गुजरात सरकार के मुखिया बने रहें। पर सामान्य तौर पर कयास था कि पटेल के ढीले नेतृत्व में भाजपा दिसंबर 2002 में आ रहे राज्य विधानसभा के चुनाव शायद ही जीत सके। इससे, अक्टूबर 2001 में, गुजरात से वर्षों से दूर रखे गए महत्वाकांक्षी मोदी की ताजपोशी की राह खुल गयी। संघ की सोच थी कि चुनाव से पहले केशूभाई सरकार की कमजोर प्रशासनिक छवि को सांगठनिक पहलों से मजबूत किया जाय।

गुजरात का मुख्यमंत्री बनने से पूर्व मोदी ने शासन में कभी किसी पद पर कार्य नहीं किया था। संघ एवं पार्टी के दायित्वों से लम्बे समय से जुड़ाव के चलते सांगठनिक क्षमता जरूर उनकी जमा-पूंजी रही होगी, हालांकि इससे उनके प्रशासनिक अभाव की भरपाई नहीं हो सकती थी। दरअसल चार माह पुराने मुख्यमंत्री की गोधरा काण्ड के समय की स्थिति, इंदिरा गांधी की 1984 में हत्या से भड़की हिंसा के समय, प्रशासनिक पकड़ में कोरे प्रधानमंत्री राजीव गांधी जैसी ही थी। राजीव की तो बल्कि सांगठनिक समझ भी अभी अधकचरी ही थी। उनके राजधर्म में निजी भावुकताएं हावी हो गयीं 'जब बड़ा पेड़ गिरता है तो धरती हिलती है।' धरती हिलाने के लिए उत्तेजित भीड़ आयोजित की गयी, आगजनी-लूटपाट-कत्ल-बलात्कार हुए। 2002 में, मोदी ने सांगठनिक तर्क 'क्रिया की प्रतिक्रिया' को आगे बढ़ाया। प्रशासनिक रूप से यह शैतानी बचकानापन ही सिद्ध हुआ। न 'प्रतिक्रिया' को सांगठनिक क्षमता से नियंत्रित करना संभव रहा और न दो-तीन दिन की 'निर्धारित' अवधि में समेटना।

दरअसल दोनों अवसरों पर राज्यसम्मत हिंसा का तोड़ देने में भारतीय तंत्र असमर्थ रहा। मंत्रिमंडल की सलाह से बंधे राष्ट्रपति और दलगत राजनीति से बंधी संसद जैसे 1984 में दर्शक बने रहे वैसे ही 2002 में भी। सर्वोच्च न्यायालय के पास, कम से कम गुजरात के सन्दर्भ में, संविधान की धारा 356 के अन्तर्गत यह व्यवस्था देने का विकल्प था कि राज्य की तत्कालीन परिस्थितियों में संवैधानिक तरीके से सरकार नहीं चलायी जा सकती। उस हालत में केंद्र के लिए मोदी सरकार को बर्खास्त कर गुजरात में राष्ट्रपति शासन लगाना अनिवार्य हो जाता। पर 'जलते रोम में बांसुरी बजाते नीरो' को बस वे जबानी खरी-खोटी ही सुनाते रहे। मीडिया ने मोदी सरकार को कठघरे में खड़ा तो रखा पर वह प्रशासन का न हाथ पकड़ सकती थी और न सजा दे सकती थी।

2014 के चुनावी दौर में भाजपा के लिए लाभदायक मानी जा रही मोदी की दबंग विकास-पुरुष की छवि दस साल पहले वाजपेयी के 'इंडिया शाइनिंग' अभियान के समय शैतानी विनाश-पुरुषवाली मानी जाती थी। यह परिवर्तन संभव है? बहुत से लोग मानते हैं कि प्रधानमंत्री बनने के बाद मोदी भाजपा में अपने विरोधियों की छुट्टी कर देंगे। पर जिस पाए का इन्क्लूसिव राष्ट्रीय नेतृत्व मोदी लाबी परोस रही है उसके लिए तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को भी छुट्टी भेजना होगा! मोदी के समय में माफी इसीलिये जटिल है।

महिलाओं के प्रति बढ़ रहे अपराधों से निपटने को शासकों का रुख

समाजवादी पार्टी नेता मुलायम सिंह यादव ने एक बार महिलाओं के प्रति बढ़ रहे अपराधों से निपटने के संबंध में अपना घटिया मत व्यक्त किया है वहीं उन्हीं के पार्टी के नेता आबु आजमी ने अपने नेता के पद चिन्हों का अनुसरण करते हुए विवाहेतर सम्बन्धों से निपटने के लिए मौत की सज़ा होने की बात कही है।

मुलायम सिंह ने अपना वक्तव्य तब दिया जब कि मुंबई के शक्ति मिल कांड में एक महिला पत्रकार से दुराचार के मामले में अपराधियों को फ़ासी की सज़ा सुनाई गई। इसी पर प्रतिक्रिया में मुलायम सिंह ने कहा कि गलतियां लड़कों से हो जाती हैं, फ़ासी की सज़ा नहीं होनी चाहिए।

मुलायम सिंह के इस बयान के आते ही इसकी आलोचना में दूसरा स्वर शासकों की ओर से आया कि दुराचार के मामले में फांसी की सज़ा सही है और यही होना चाहिए। स्पष्ट है एक और मुलायम सिंह जैसे लोग़ों का वक्तव्य सामंती-पुरुषप्रधान मानसिकता को दर्शाता है जो मानता है

मुलायम सिंह ने अपना वक्तव्य तब दिया जब कि मुंबई के शक्ति मिल कांड में एक महिला पत्रकार से दुराचार के मामले में अपराधियों को फ़ासी की सज़ा सुनाई गई। इसी पर प्रतिक्रिया में मुलायम सिंह ने कहा कि गलतियां लड़कों से हो जाती हैं, फ़ासी की सज़ा नहीं होनी चाहिए।

कि यह पुरुषों की फितरत में है इसलिए यह एक गलती से ज़्यादा कुछ भी नहीं, इसका यह भी अर्थ स्वत: तब निकलता है कि यह कोई बड़ी बात नहीं है यह तो होता रहता है इसे महिलाओं को भी स्वीकार करना चाहिए इसलिए पुरुष की गलती को माफ कर दिया जाना चाहिए। इसलिए शासकों के बीच के ही कुछ लोग कहते हैं कि अपने पर होने वाले इस आक्रमक को महिलाओं को मनोरंजन करना चाहिए। यह घृणित व निकृष्ट सोच महिलाओं को उपभोग के रूप में ही देखती है। इनके लिए महिलाओं का अपना वजूद इच्छा अनिच्छा जज्बातों के लिए कोई जगह नहीं।

दूसरी ओर अपने को सामंती पुरुष प्रधान मानसिकता का विरोध व जनवादी दिखाने वाले शासक वर्ग के लोग कहते हैं और हर बार स्थापित करते हैं कि महिलाओं के प्रति बढ़ रहे यौन अपराधों से निपटने का एकमात्र रास्ता है कि यौन अपराधों को अंजाम देने वाले लोग़ों को तत्काल फांसी की सज़ा दे दी जाय। इनकी नज़र में कठोर कानून हर मर्ज (अपराध) की दवा है। फांसी की यह सज़ा खुद में एक संदेश होगी कि इस प्रकार के अपराध को ना किया जाने यानि अपराधी अपराध करने से पहले सोचे और डरे और इस प्रकार अपराध को अंजाम ना दे पाये।

ये दो भिन्न लगने वाली यौन अपराधियों से निपटने के मामले में दो बिलकुल अलग-अलग छोड़ पर रहे हैं। एक के हिसाब से यह मात्र गलती है जबकि दूसरे के हिसाब से यह ऐसा अपराध है जिसका समाधान फ़ांसी है। जिसमें पहला अपने भीतर सामंती दकियानूसी सोच के लिए हुए है। जिसके लिए महिलाएं या तो पैर की जूती हैं या फ़िर देवी। पुरुष के हिसाब से चलें तो सब ठीक। हालांकि यहां अपराध के लिए 'आंख के बदले आंख' का ही सिद्धान्त है।

जबकि दूसरा पूंजीवाद की पतनशील होते जाते दौर की सोच है जो वैज्ञानिक सोच व तार्किक होने का दावा करने के बावजूद बढ़ते यौन अपराधों, कुंठित मनोवृत्ति को जन्म देने वाली चीजों को गायब कर देता है। वह उस पूंजीवादी व्यवस्था के संबंध में कुछ नहीं कहता या चुप्पी साध जाता है जो महिलाओं की छवि को दिन रात 'कामुक' या 'यौन वस्तु' के रुप में अपने विज्ञापनों, फिल्मों, साहित्यों व संगीत में लगातार प्रस्तुत करता जा रहा है। इसके लिए महिलाएं केवल 'यौन वस्तु' है। यह महिलाओं का अमानवीयकरण है यहां भी महिलाओं के जजबातों, इच्छाओं आदि के लिए कोई जगह नहीं है। इस प्रकार का चौतरफ़ा प्रचार प्रसार किस मानसिकता को जन्म देगा इस पर खामोशी की चादर ओढ ली जाती है। बस इसके विपरीत बढ़ते यौन अपराधों के खिलाफ़ पुरानी सामंती सोच को ही अमल में लाते हुए 'फ़ांसी, फ़ांसी' का जाप किया जाता है।

यह सब एक ओर इनकी सोच को प्रकट करता है तो दूसरी ओर इनकी मजबूरी को भी ये जानते हैं कि इन बढते अपराधों की छान बीन इन्हें या समाज को किस दिशा में ले जाएगी। इसलिए चुप्पी भी एक हथियार है।

- नागरिक

आंखों देखा बनारसी चुनाव दंगल: जनता का कैसे हो मंगल

-बनारस से लौटकर सतीश कुमार

भाजपा के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार नरेन्द्र मोदी व आम आदमी पार्टी (आप) के संयोजक अरविंद केजरीवाल की टक्कर ने वाराणसी चुनाव को इतना रोचक बना दिया कि सारे देश की निगाहें इसी पर टिकी रही। बेशक यहां मुकाबले में मुलायम की समाजवादी पार्टी (सपा), मायावती की बहुजन समाज पार्टी (बसपा) तथा गांधी परिवार की कांग्रेस भी खड़ी थीं, लेकिन चर्चा में केवल मोदी व केजरीवाल ही रहे। इस रोमांचक राजनीतिक खेल का लाइव शो देखने के लिये हम दोस्तों ने बनारस जाने की ठानी। दिनांक 6 मई को प्रात: साढे 6 बजे फ़रीदाबाद से निकलकर आगरा, कानपुर, इलाहाबाद होते हुए रात करीब साढे आठ बजे बनारस पहुंचे। रास्ते में रूक-रूक कर स्थानीय लोगों की जीवन शैली व सामाजिक ताने-बाने को देखने के अलावा राष्ट्रीय राजमार्ग पर सड़क निर्माण के नाम पर 12 टोल बूथों पर होने वाली लूट को भी देखा। सड़कों पर लचर यातायात व्यवस्था को भी देखा। उल्टी दिशा से कब कोई वाहन आकर ठोक दे कोई भरोसा नहीं। खैर जैसे-तैसे हम लोग बनारस पहुंच भी गये और सकुशल लौट भी आये।

यह भी एक इत्तफ़ाक ही था कि बनारस के जिस गैस्ट-हाउस में हम जाकर ठहरे थे वहां ठहरे सभी अन्य गैस्ट 'आप' पार्टी से सम्बन्धित थे और दूर-दूर से अपने खर्चे पर आकर वहां केवल पार्टी प्रचार के लिये ठहरे थे। इनमें से प्रमुख थे अरविंद केजरीवाल के साथ आई आई टी खड़गपुर में पढे प्रासेनजीत पति। भुवनेश्वर (उड़ीसा) से आये पति पार्टी की वित्त शाखा और उसमें भी खासकर विदेशों में बसे भारतीयों से आने वाले चंदे का प्रबन्धन करते हैं। अरविंद से दोस्ती व उनकी पार्टी के प्रति अगाध निष्ठा के चलते वे अपना अच्छा-खासा कारोबार छोड़कर बनारस में डेरा डाले थे। उनके काम-काज के बारे में अधिक ब्योरा तो नहीं मिल सका लेकिन वे हर समय अपने लैपटॉप व मोबाइल फ़ोन पर ही व्यस्त नज़र आते थे।

भावना वासनिक अमरावती (महाराष्ट्र) से 'आप' के टिकट पर चुनाव लड़कर यहां पहुंची थी। पेशे से कॉलेज में सहायक प्रोफ़ेसर भावना अपने क्षेत्र के आदिवासियों एवं वनवासियों की समस्याओं को लेकर संघर्षरत रही है। अपनी इसी संघर्षशीलता के चलते वे 'आप' से जुड़ी। हालांकि 'आप' से जुड़ने के बावजूद उन्हें वह सामान्य ज्ञान भी उपलब्ध नहीं हो सका जो इस तरह के संघर्षों को किसी अंजाम तक पहुंचाने के लिये जरूरी होता है। लेकिन उनकी दिलचस्पी, लगन व हिम्मत को देखते हुए कहा जा सकता है कि वे शीघ्र ही नवनिर्मित वन अधिकार अधिनियम, श्रम अधिनियम, पर्यावरण अधिनियम तथा शासक/शोषक वर्ग से लड़ने के तमाम तौर तरीके समझ लगी। संदर्भवश पाठक यह भी समझ लें कि अमरावती क्षेत्र गढचिरोली से सटा हुआ है जहां आदिवासी/वनवासी अपने जंगल, जल व, जमीन को कार्पोरेटों के खूनी पंजे से बचाने के लिये संघर्षरत हैं तथा सरकारीतन्त्र ने उनके दमन में कोई कोर कसर नहीं छोड़ रखी।

अनीता प्रताप कोच्चि (केरल) से 'आप' के टिकट पर चुनाव लड़कर 7 मई को ही बनारस पहुंची थी। वे आई बी एन 7 (अंग्रेज़ी) की पत्रकार हैं। मूल रूप से अमृतसरी और हैदराबाद में बसी जसमीत कौर 'आप' की संस्थापक सदस्यों में से एक हैं, वे अपनी टीम के साथ यहां आयी हुयी थीं। उनकी पूरी टीम दिन भर यथाशक्ति शहर भर में घूम कर चुनाव प्रचार करती थी। प्रचार के नाम पर ये लोग 'आप' की जनसभाओं व पदयात्राओं में शामिल होकर भीड़ बढाने व वक्त जरूरत बहस द्वारा मुद्दों को स्पष्ट करने का काम करते थे।

इन सबके अलावा और भी कई युवक युवतियां विभिन्न शहरों से आकर यहां ठहरे थे। इनमें से अधिकांश या तो किसी आई आई टी में पढ रहे थे या पढ चुके थे और 'आप' के प्रति जुनून के चलते अपने खर्चे पर, काम-काज छोड़ कर बनारस में जुटे थे।

इस सबके बावजूद 'आप' के प्रबन्धन में काफ़ी खामियां नज़र आईं जो शायद किसी भी नवजात पार्टी में होना स्वाभाविक होता है। कार्यकर्ता एवं जुनूनी लोग तो देश भर से यहां पहुंच गये लेकिन उन्हें कहां, किस काम पर, कैसे लगाना है, उनका बेहतरीन सदुपयोग कैसे किया जा सकता है, इस मार्ग दर्शन का नितांत अभाव देखने को मिला।

गुरदासपुर से कांग्रेसी उम्मीदवार विनोद खन्ना को 'आप' के टिकट पर कड़ी टक्कर देकर यहां पहुंचे सरदार भूपेन्द्र सिंह व उनकी बीसियों युवक युवतियों की टीम का जोश तो देखते ही बनता था। विदित है कि भाजपा एवं आर एस एस की गुंडावाहिनी बड़े ही अक्रामक तरीके से यहां चुनाव प्रचार को बाधित करने में जुटी थी। लेकिन जब सेर को सवा सेर टकरा गये तो वे अपनी औकात में आ गये। शहर में कई जगह भाजपा व 'आप' अगल-बगल होकर जबरदस्त नारेबाज़ी करते रहे। टक्कर मुकाबले की देखकर संघियों की हिम्मत नहीं होती थी कि वे हमला करें।

गंगा के घाटों व विश्वनाथ मन्दिर के आस-पास का घना बसा शहरी क्षेत्र, उसके पंडे, पुजारियों व उनके सहारे चलने वाली छोटी-बड़ी दुकानों वाले मोदी के अंध-भक्त थे। दरअसल उनकी रोज़ी-रोटी व तमाम कारोबार हिन्दुत्व पर ही तो आधारित है। इसलिये उन्हें मोदी का हिन्दुत्व माफ़िक आना स्वाभाविक है। इसके चलते इन लोगों की करीब 3 लाख वोटों को मोदी की जेब में माना जा रहा था।

इसके बावजूद इक्का-दुक्का पंडा व दुकानदार, बेशक अपवाद स्वरूप ही सही मोदी को गालियां देता मिल ही जाता था। दशाश्वमेध घाट पर एक पंडा गालियां बकता हुआ कह रहा था कि राजनेता किसी भी दल के हों, वोट लेने के वक्त तो सब कुछ जनता पर न्योछावर करने के वायदे करते हैं बाद में कोई नज़र नहीं आता। वह स्पष्ट रूप से कह रहा था कि गत 5 वर्षों से मुरली मनोहर जोशी वाराणसी से सांसद रहे, उन्हीं की पार्टी के दो विधायक इसी शहर से हैं, इतना ही नहीं नगर निगम पर भी भाजपा का पूरा आधिपत्य होने के बावजूद पूरे शहर की दुर्दशा देखने लायक है। न ढंग की सड़कें हैं न नालियां। शिक्षा और चिकित्सा की तो बात ही छोड़ दीजिये।

बाज़ार में चलते-चलते 5-7 मिनट के लिये एक चौराहे पर तैनात बैठे पुलिस वालों के साथ हम भी उनके बेंच पर बैठ गये। बिना किसी पार्टी विशेष का नाम लिये हमने उन पुलिस वालों को टटोलना शुरू किया तो एक 25-30 वर्षीय सिपाही, जो शायद इस व्यवस्था से काफ़ी दुखी था गालियां देते हुए बोला कि पचासों बरस तो कांग्रेसी लूट चुके इस देश को अब ये भाजपाई चले आ रहे हैं। उसका गुस्सा मोदी के प्रति तो नज़र नहीं आया हां उसके नाम पर उत्पात मचाते भाजपाई छुटभैयों के प्रति उसका गुस्सा बहुत ज़्यादा था। चुनाव का परिणाम चाहे जो भी हो लेकिन पूरे बनारस में टक्कर तो मोदी व केजरीवाल में ही नज़र आ रही थी; शेष सभी उम्मीदवार तो बरायनाम ही नज़र आ रहे थे।

'मज़दूर मोर्चा' भी बनारस वालों को खूब भाया। अपने साथ ले गये 500 प्रतियों में से हम करीब 300 प्रतियां बेच पाये। चुनाव के माहौल में जहां तरह-तरह के पर्चे व अन्य सामग्रियां मुफ़्त बंट रही हों वहां 'मज़दूर मोर्चा' दो रुपये में बेचने में थोड़ी दिक्कत तो जरूर आई, लेकिन जिन्होंने भी दो रुपये खर्चे उन्होंने इसे पढ कर सराहा भी।

बनारस में ही नहीं, आगे भी काफ़ी लोग मिले जो भाजपाई उम्मीदवारों से त्रस्त होते हुए भी मोदी के नाम पर कमल को वोट दे रहे थे। आजमगढ़ से माफिया-हत्यारा रमाकांत यादव भाजपा का उम्मीदवार था और मोदी ने उसके साथ मंच साझा किया। तो भी भाजपायी वोट उसी के खाते में पड़ते नज़र आ रहे थे। इसी तरह पड़ोसी सीट घोसी के बारे में मड़ई पाली, कौड़ी राम तथा बडहल गंज के इलाके में लोगों से बातचीत की तो वे अपने मौजूदा सांसद कमलेश पासवान को दोबारा तो चुनना नहीं चाह रहे थे, लेकिन मोदी के नाम पर उसी को वोट देने की बात कहते पाये गये। मुकाबले में मायावती की बसपा से जुड़े लोग भी उत्साह में दिखे। वे किसी तरह भी हार मानते नहीं दिख रहे थे। पर पैसे में बहुत पीछे थे।

एक रात मड़ई में रूकने के बाद अगले दिन दोपहर तक अपने दूसरे मित्र के गांव, दोहरीघाट के पास जोकहरा (आज़मगढ़) पहुंचे। भूमिहार बहुल इस इलाके में भीभाजपा की हवा बता रही थी कि उच्च जातियों के वोट मोदी को जा रहे हैं। अगले दिन इलाहाबाद के लिये निकलते हुए पास के ही एक कस्बे अज़मतगढ़ में वह मंदिर देखने गये जिसकी देखाभल उस मुहल्ले के मुस्लिम परिवार करते हैं। इस मंदिर की खूबी यह है कि इसमें एक सुरंग निकलती है जिसे स्वतंत्रता सेनानी (1857) कुवर सिंह ने अंग्रेज सेना को चकमा देने के लिये बनवाया था। न केवल उस कस्बे में बल्कि पूरे इलाके में हिंदू-मुस्लिम इस कदर घुलेमिले रहते हैं कि उन्हें तब तक पहचाना नहीं जा सकता जब तक उनकी पहचान पूछी न जाय। समाज को बांटने का काम राजनीतिक लोग कर रहे हैं।

हाथी को काबू में रखता ऊंट

तीन रात बनारस में गुजारने के बाद हम लोग आजमगढ, जहां से मुलायम सिंह यादव चुनाव लड़ रहे थे, का जायजा लेते होते हुए बडहलगंज के रास्ते अपने एक साथी के गांव मड़ई जा रूके। रास्ते में एक हाथी के साथ-साथ ऊंट को भी कदम से कदम मिलाकर चलते देखा। 20-30 किलोमीटर के बाद फ़िर से एक और हाथी के साथ भी ऊंट को उसी तरह चलते देखा तो वजह पूछे बगैर नहीं रहा जा सका। हमारे स्थानीय साथी ने बताया कि जिन बदमाश हाथियों के कभी भी बेकाबू हो जाने का खतरा बना रहता है, उनके साथ ऊंट को भी रखा जाता है यह ऊंट इस तरह से प्रशिक्षित होता है कि महावत का ज़रा सा इशारा मिलते ही यह पीछे से हाथी के कान को अपने दांतों से ऐसे नोचता है कि बड़े से बड़ा व बदमाश से बदमाश हाथी कराह उठता है।

दूसरी ओर हाथी को ट्रेनिंग के दौरान यह अनुभव करवाया जा चुका होता है कि ऊंट द्वारा कान नोचे जाने से क्या होता है। उसी अनुभव के भय से हाथी ऊंट की मौजूदगी मात्र से ही बेकाबू होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। क्या भारतीय राजनीति में इसका कोई सबक बनता है? क्या हाथी की तरह मदमस्त राजनीतिकों पर जनता को सजग ऊंट की तरह पहरा नहीं देना चाहिए?

हर तीसरा नौजवान बेरोजगार

यह देश की आम सच्चाई बनती जा रही है कि भारी संख्या में आज पढे-लिखे नौजवान बेरोजगार हैं। देश में स्नातक या उससे ऊपर की डिग्रीधारी प्रति 3 नौजवानों में से 1 पूर्णत: बेरोजगार है। बेरोजगारी की यह समस्या पूंजीवादजनित है। पाठ्यक्रमों की किस्म बदल देने भर से यह कभी दूर नहीं हो सकती। कोई 10-15 साल पहले निश्चित रोजगार का साधन मानी जाने वाली पॉलीटेक्निक, बी.एड., इंजीनियरिंग, प्रबंधन, आदि की डिग्रियां आज रोजगार के प्रति वैसी आश्वस्ति पैदा नहीं करतीं। ऐसे डिग्रीधारी बहुत से नौजवान आज बेरोजगार हैं। यू.जी.सी. इस बात की कतई गारंटी नहीं कर सकता कि कुछ समय बाद उसके ये नये व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी रोजगार दिलाने की क्षमता नहीं खो देंगे। शुरूआत में जरूर इन पाठ्यक्रमों से थोड़े समय के लिए रोजगार मिलने लगेंगे। उस समय यह तर्क भी दिया जायेगा कि सामान्य स्नातक छात्र इसलिए बेरोजगार हैं क्योंकि उन्होंने व्यावसायिक पाठ्यक्रम नहीं किये हैं। लेकिन जब बहुतायत में छात्र-नौजवान इन पाठ्यक्रमों को भी करने लगेंगे तो ऐसे प्रशिक्षत नौजवानों की आपूर्ति पूंजीपतियों की मांग से ज्यादा हो जायेगी और तब ये पाठ्यक्रम भी रोजगार दिलाने की क्षमता खो देंगे। पूंजीवाद में शिक्षा और रोजगार का यह अंतर्विरोध इसी ढंग से काम करता रहता है और बेरोजगारी का एक औसत स्तर हमेशा बना रहता है। यह स्तर कभी थोड़ा हल्का हो जाता है और कभी भयावह रूप धारण कर लेता है। वैश्विक पूंजीवाद जिस तरह गंभीर आर्थिक संकटों की तरफ बढ़ता जा रहा है, उसमें बेरोजगारी के इस स्तर के भयावह होते चले जाने की ही संभावना ज्यादा है।

मौजूदा समय में भी देश में बेरोजगारी की स्थिति भयावह है। 'लेबर ब्यूरो ऑफ गवर्नमेंट ऑफ इंडिया' की हाल में जारी ''थर्ड एनुअल एम्प्लायमेंट/अनएम्प्लायमेंट रिपोर्ट, 2012-13'' एक हद तक इसे जाहिर कर देती है। रिपोर्ट के अनुसार देश में इस समय कामगार आबादी (15-59 आयु वर्ग) लगभग 75 करोड़ है। रिपोर्ट का कहना है कि इसमें से हर कोई रोजगार करना नहीं चाहता है, जैसे घरेलू महिलाएं, पढ़ाई कर रहे छात्र, आदि। इस प्रकार मान लेने रिपोर्ट के अनुसार देश में श्रमशक्ति भागीदारी दर 359 प्रति एक हज़ार है। यानि रोजगार के बाज़ार में मौजूदा आबादी लगभग 42.4 करोड़ है। रिपोर्ट देश में बेरोजगारी की दर 9.4 प्रतिशत आंकती है, जिस हिसाब से देश में 4 करोड़ लोग सीधे तौर पर बेरोजगार हैं। बेरोजगारी के आंकलन का यह तरीका निश्चित ही बाजीगरी भरा है। यह बेरोजगारी की वास्तविक तस्वीर को दिखाने के बजाय छिपाता ज़्यादा है। फ़िर भी यह पर्दे को इतना तो उठा ही देता है कि बेरोजगारी की भयावहता की एक झलक मिल जाये।

यह रिपोर्ट शिक्षित बेरोजगारों की भी स्थिति बताती है। रिपोर्ट के अनुसार स्नातक या उससे ऊपर की पढ़ाई कर चुके 31.6 प्रतिशत नौजवान आज देश में बेरोजगार हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रतिशत 36.6 है और शहरी क्षेत्रों में 26.5 है। इस गणना में आई. टी. आई./पॉलिटेक्निक/नर्सिंग जैसे डिप्लोमा किये छात्र-छात्रायें शामिल नहीं हैं। इन्हें स्नातक की डिग्री के बराबर नहीं माना जाता है। किंतु हम जानते हैं कि ये उसी छात्र तबके से होते हैं, जो सामान्य कालेजों में बी.ए./बी.एस.सी. करने आते हैं। इन्हें जोड़ देने पर निश्चित ही यह आंकड़ा काफ़ी ऊपर चढ़ जायेगा। शिक्षित बेरोजगारों की यह तस्वीर निश्चित ही भयावह है।

-परचम

तुर्की-ब-तुर्की

"यह मेरी नहीं जनता की हार है"

हमारा कहना है :

- इसी अकड़ का शिकार इन्दिरा गांधी भी थी। तब के कांग्रेस अध्यक्ष देव कांत बरूआ ने इसी अंदाज़ में कहा था, ''इन्दिरा इज़ इंडिया इंडिया इज़ इन्दिरा।''
- अपनी मूर्खताओं का ठीकरा जनता के सिर पर फ़ोड़ना एक ऐसे दल के मुखिया को शोभा नहीं देता जो पूरी तरह जनता के समर्थन से पैदा हुआ है। आपने न सिर्फ़ जनमत का अपमान किया है बल्कि जनता का भी अपमान किया है।
- 'आप' की वर्तमान कमज़ोर स्थिति के पीछे इसके नेताओं का आलोकतान्त्रिक रवैया भी है। इतने दिनों में न पार्टी का संगठन खड़ा किया गया और न ही इसकी गतिविधियों को लोकतांन्त्रिक रूप से चलाने की पहल की गयी। लिहाज़ा चन्द लोग ही बिना किसी जवाबदेही के पार्टी को चला रहे हैं।
- लोकतन्त्र में जनता कभी गतल नहीं होती। जितनी जल्दी आप यह सबक सीख लें उतना ही व्यक्गित रूप से स्वयं आपके लिये तथा पार्टी के लिये ठीक होगा।

लुटेरे नंगे नाचे इस चुनाव में

-मनोज कुमार झा

कांग्रेस एक परिवार तक सिमटी हुई पार्टी है और प्रमुख विरोधी दल भाजपा एक व्यक्ति तक। अगर सोनिया- राहुल कांग्रेस के पर्याय हैं तो नरेन्द्र मोदी अब भाजपा के पर्याय बन चुके हैं। लगभग सभी पार्टियों के केन्द्र में व्यक्ति हैं। समाजवादी पार्टी मुलायम की, राजद लालू प्रसाद की, जद (यू) नीतीश कुमार की, बसपा मायावती की, तृणमूल कांग्रेस ममता बनर्जी की, राष्ट्रवादी कांग्रेस शरद पवार की, ओडिसा में बीजू जनता दल नवीन पटनायक की। शिव सेना और उसकी सौतेली महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना ठाकरे परिवार की। दक्षिण की प्राय: सभी पार्टियां पहले से ही व्यक्तिकेन्द्रित रही हैं। यहां तक कि वामपंथीदल भी अब पूरी तरह व्यक्तिकेन्द्रित ही हो गए हैं।

यह 'दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र' कहे जाने वाले इस देश की सबसे बड़ी विडंबना है। और इस बात को साबित करने के लिए काफी है कि आजादी के सात दशकों में इस देश में लोकतांत्रिक प्रक्रिया का विकास होने की जगह इतना ह्रास हुआ है कि सियासी पार्टियां किसी व्यक्ति की पहचान की मोहताज हो गईं। व्यक्ति से अलग उनका कोई वजूद ही नहीं रह गया।

ऐसा लगता है कि प्राय: सभी सियासी दलों का विकास गिरोह के रूप में हुआ है, जिनका कोई न कोई सरगना है और जिसके खिलाफ़ आवाज़ उठा पाना उस गिरोह में भी किसी के लिए संभव नहीं है। ये राजनीतिक गिरोह माफ़िया संस्कृति पर आधारित हैं। लूट जिनका पेशा है और जो जनहित के विरुद्ध हैं। ऐसे में, दुनिया के इस तथाकथित सबसे बड़े लोकतंत्र को लूटतंत्र कहना भी जरा गलत नहीं होगा।

विकास और जनहित के नाम पर यह 'लोकतंत्र' अंग्रेजों से विरासत में ही मिला है। अंग्रेज भी विकास और जनहित की बात करते थे और इस आड़ में जनता को बर्बरतापूर्वक लूटते थे। वो सिलसिला जारी है। भगत सिंह ने जनता की आजादी का कुछ और ही मतलब बताया था। उनका मानना था कि जबतक जनता को आर्थिक आजादी नहीं मिलती, व्यवस्था में बदलाव नहीं होता यानी स्वत्वाधिकार जनता को नहीं मिलता तो गोरों की जगह काले अंग्रेज आ जाएंगे, फ़र्क कुछ नहीं पड़ेगा। महान कथाकार और विचारक प्रेमचंद ने भी व्यवस्था परिवर्तन का सवाल उठाते हुए कहा था कि महज सत्ता परिवर्तन यानी जॉन की जगह गोविंद के आ जाने से कुछ नहीं होगा। ऐसा लगता है, आज यह सवाल किसी के सामने नहीं है। अग्रगामी वामपंथियों के सामने भी नहीं। इस लोकतंत्र में संविधान की कसमें खानी पड़ती हैं, जो लूटतंत्र को पूरी वैधता प्रदान करता है, जो वास्तव में सत्ता की बागडोर पूंजीपतियों के हाथों में थमाता है और उसे जनता के स्वत्वहरण करने का पूरा अधिकार देता है, जो संविधान मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण के चिरंतन सिद्धांत पर आधारित है। इस संविधान की कसमें खाकर चुनाव जीत जनता की किस्मत बदलने का दावा करने वाले कितना बड़ा छलावा कर रहे हैं, वे उसे भली-भांति समझते हैं। पर यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया का जो विधान है, उसमें जनता के लिए वोट देना जरूरी है। खास बात यह है कि जनता के स्वत्वहरण पर आधारित इस लोकतंत्र को बहुत पवित्र माना गया है, इसी प्रकार वोट देने यानी मतदान करने को एक पुनीत कर्त्तव्य भी बताया जा रहा है। इस लोकतंत्र के प्रति निष्ठावान कई पुजारी तो ऐसे हैं जो यहां तक मांग कर रहे हैं कि मतदान न करने वाले को देशद्रोही और लोकतंत्र विरोधी घोषित कर उस पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए।

वहीं, जनता अधिक से अधिक मतदान करे, इसके लिए सरकारी-गैरसरकारी हर स्तर पर प्रचार अभियान चलाया जा रहा है। मतदान के प्रति जनता को जागरूक करने के लिए मीडिया में विज्ञापन दिए जा रहे हैं। मतदान के प्रति वोटरों को आकर्षित करने के लिए सिनेमा और क्रिकेट जगत के सितारों को ब्रांड एंबेसडर भी नियुक्त किया जा रहा है।

आख़िर ये सब किसलिए? इससे क्या समझा जाए कि वर्तमान राजनीति प्रक्रिया में जनता की अहम भूमिका है? लगता है। पर विडंबना तो यह है कि वर्तमान चुनावी प्रक्रिया में जनता की भूमिका महज एक वोटर के रूप में ही रह गई है, इससे ज्यादा कुछ नहीं। सियासी दलों और नेताओं के लिए जनता सिर्फ़ और सिर्फ़ एक वोटर है। इससे ज़्यादा कुछ भी नहीं। पांच वर्षों के बाद होने वाले चुनावों में जनता के पास मतशक्ति का प्रयोग कर सरकार बदलने की क्षमता तो होती है, पर बदलाव के लिए उसके पास विकल्प नहीं होते। उसे उन्हीं दलों और नेताओं में से किसी एक को चुनना होता है जिसे वह पहले भी चुन चुकी होती है जो कितने उसके हितैषी रहे हैं, यह देख चुकी होती है। खास बात तो ये है कि जनता मताधिकार के प्रयोग से सरकार भले ही बदल दे, 'सिस्टम' तो नहीं बदल सकती जिसके तहत जनता का विधिवत स्वत्वहरण और जनसंसाधनों का चंद पूंजीपतियों के निजी हित में निर्मम दोहन अबाध गति से अविराम जारी रहता है।

इसलिए चुनाव इस लोकतंत्र की सीमा होने के साथ ही एक बड़ा छलावा भी है। छलावा यह इस रूप में है कि यह भ्रम पैदा करता है कि चुनाव के माध्यम से जनता सकारात्मक राजनीतिक-आर्थिक बदलाव ला सकती है,महज मताधिकार का प्रयोग कर और आश्चर्य की बात तो यह है कि प्राय:सभी राजनीतिक समीक्षक इस बात को सच मान बैठे हैं। लोकतंत्र उनके लिए पवित्र पूजनीय है, संविधान गीता और बाइबिल है। यहां सवाल यह है कि जनता के प्रतिनिधि के रूप में कौन सामने आते हैं। सभी प्रमुख दलों के प्रमुख नेताओं-उम्मीदवारों को देखा जाए कि वे किस वर्ग से आते हैं, क्या वे 'जनता के आदमी' हैं? आज शायद ही कोई उम्मीदवार ऐसा हो जो करोड़पति नहीं, अरबपति-खरबपति तो कितने हैं, जबकि देश की व्यापक जनता भूख से बेहाल और फटेहाल है। यहां उल्लेख करना रोचक होगा कि भाजपा के प्रधानमंत्री पद के घोषित उम्मीदवार नरेन्द्र मोदी जो ढाई सौ करोड़ से निर्मित ऑफिस में बैठते हैं, देश के शीर्ष पूंजीपतियों में से एक अडानी के जेट में उड़ते हैं, ब्रांडेड कपड़े, जूते, चश्मे पहनते हैं, अपने आपको हास्यास्पद तरीके से चाय बेचने वाले के रूप में प्रस्तुत करते हैंऔर खुद को नीची जाति का बता कर वोटरों की आंख में धूल झोंकने की कोशिश करते हैं। वहीं, कांग्रेस की ओर से प्रधानमंत्री पद के अघोषित उम्मीदवार राहुल गांधी का यूपी के गांवों में दलितों के यहां खाने और सोने की नौटंकी पूरा देश देख ही चुका है। लालू, मुलायम और अन्य राजनीतिबाजों की तो छोड़ें। मायावती अरबों की मालकिन हैं। मुलायम पर आय से अधिक संपत्ति अर्जित करने का केस है, लालू हज़ारों करोड़ के चारा घोटाले में जेल जा चुके हैं। एक बार नहीं, अनेक बार। और ये ही चुनाव में ग़रीबों का मसीहा होने का दावा करते हैं। सोनिया अकूत संपत्ति की मालकिन हैं। उनका दामाद वाड्रा लुटेरा बताया जा रहा है। पर रहनुमा तो यही लोग हैं। जनता क्या करे? राजनीति को ऐसा व्यवसाय बताया जा रहा है, जिसमें पूंजीनिवेश कुछ नहीं, मुनाफ़ा अरबों का। तो यह लूट ही है। अंग्रेज भी इस देश में पूंजीनिवेश धेला नहीं करता था और अकूत मुनाफ़ा। कमाता था। फ़िर क्या फ़र्क है इन देसी रहनुमाओं और अंग्रेजों में? कुछ भी नहीं, अंग्रेजों ने जो औपनिवेशिक लूटतंत्र कायम किया था, थोड़े-बहुत ऊपरी बदलावों के साथ वही तंत्र चल रहा है। आजादी महज एक खोखला नारा है जो जनता को गुमराह करने के काम आता है।

पिछले सात दशकों से लीडरान चाहे किसी भी दल के हों, आजादी और विकास के नाम पर जनता को गुमराह कर रहे हैं ताकि जनतंत्र के नाम पर लूट की व्यवस्था कायम रहे और सातों पीढियां दूधो नहाती-पूतों फलती रहें। पहले जहां राजवंश होते थे, अब राजनीतिकों के वंश हैं। नेहरू-गांधी परिवार, और यही क्यों, सबके अपने-अपने परिवार हैं। हर राजनीतिक का बेटा इसी धंधे में आता है। परिवार की राजनीतिक विरासत संभालता है। कैसा लोकतंत्र है यह? दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र!!!

पहले इस लोकतंत्र को टाटा-बिड़ला-डालमिया चलाता था। अब अंबानी और अडाणी चलाता है। इस देश के लोकतंत्र को कल-कारखानों, खदानों, खेतों-खलिहानों में काम करने वाले मज़दूर-किसान नहीं चलाते। वो रोटी के लिए संघर्ष कर रहे हैं। अपना जैविक अस्तित्व तक बचाए रख पाना उनके लिए भारी पड़ रहा है। इसी लोकतंत्र में दस लाख से भी ज़्यादा किसानों ने जैविक अस्तित्व बचाये रखने के संघर्ष में हार कर आत्महत्या की है, पर यह किसी पार्टी के लिए, किसी नेता के लिए मुद्दा नहीं है। शायद ही किसी नेता ने चुनाव प्रचार के दौरान इस तथ्य को सामने रखा हो। पर ये वंचित लोग, इस समाज और व्यवस्था की मुख्य चालक

वहीं, कांग्रेस की ओर से प्रधानमंत्री पद के अघोषित उम्मीदवार राहुल गांधी का यूपी के गांवों में दलितों के यहां खाने और सोने की नौटंकी पूरा देश देख ही चुका है। लालू, मुलायम और अन्य राजनीतिबाजों की तो छोड़ें। मायावती अरबों की मालकिन हैं। मुलायम पर आय से अधिक संपत्ति अर्जित करने का केस है, लालू हज़ारों करोड़ के चारा घोटाले में जेल जा चुके हैं।

शक्ति वोटर के रूप में महत्त्वपूर्ण हैं, चुनाव व्यवस्था में मामूली बदलाव के कारण अब वोट लूटना थोड़ा कठिन है, वरना पहले इन वंचितों की चुनाव के दौरान भी ज़्यादा परवाह नहीं की जाती थी। थोक में वोट लूटे जाते थे, खरीदे जाते थे। एक ज़माना था जब कांग्रेसी चार आने में ग़रीबों से वोट खरीद लिया करते थे। अब भी खरीदते हैं और जहां मौका मिलता है, लूट भी लेते हैं। पहले क्या दलितों को वोट का अधिकार था? वोट के अधिकार के लिए जब आवाज़ उठाई दलितों ने तो उन्हें गोलियों का शिकार होना पड़ा। नरसंहार और गैंगरेप। यह झेलना इस लोकतंत्र में जनता की नियति बन गई है।

बीजेपी के प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार नरेन्द्र मोदी और उसका दाहिना हाथ अमितशाह सुनियोजित दंगों और नरसंहार का आरोपी है। उसके प्रचार के लिए थैलीशाहों ने अपना ख़जाना खोल दिया है। थैलीशाहों को यह नेता भा गया है, क्योंकि यह हिटलरवादी है। कांग्रेस और दूसरे दलों के शासन में जनता पर मार कम नहीं पड़ी, पर उसे रोने-चिल्लाने-रिरियाने की छूट तो थी। इस मोदी की नीति है कि मारूंगा और रोने भी नहीं दूंगा। आवाज़ बंद कर दूंगा। इसलिए यह थैलीशाहों का ज़्यादा प्रिय है और उन्होंने इस पर दांव लगा दिया है।

घोटाले तो सभी ने किए, देश और जनता का लोकतंत्र के नाम पर लूटा सभी ने, पर इन घोटलों की ख़बरें भी तो सामने आईं और इनका भारी विरोध हुआ, मुकदमे चले। चल रहे हैं, भले ही ये एक नाटक ही हों, लेकिन मोदी एंड कंपनी सबको खरीद लेने में यकीन करती है और जो खरीदा ना जा सके, उसे तत्काल जहन्नुम का रास्ता दिखा सकती है। बड़ी शातिर और ख़ूनी निग़ाह है इसकी। इसीलिए यह लुटेरों पूंजीपतियों का इतना प्रिय है। क्या ख़ूब कि देश की जनता का एक अच्छा-खासा हिस्सा इसके पक्ष में है और 'हर-हर मोदी' के जाप में लगा हुआ है। ना जाने किस लोक में विराजने वाले भगवानों से छली गई जनता अब इस देश के नये भगवान के रूप में अपने-आपको घोषित कर रहे मोदी के हाथों छली जाने को तैयार दिखती है। वैसे तो हर चुनाव में ही सभी दलों के नेताओं ने आले दर्जे का घटियापन दिखाया है, तरह-तरह की नौटंकियां और भड़ैती की है। जनता से वोट लेने के लिए हर जुगत की है। बॉलीवुड की हीरोइनों का रोड शो करवाना तो पुराना नुस्खा हो गया। अब तो सभी पार्टियों ने जनता को लुभाने के लिए हीरोइनों को भी चुनाव मैदान में उतारा है। 'आप' के नेता अरविंद केजरीवाल तक इस मामले में पीछे नहीं रहे। बहरहाल, इन बातों को छोड़ भी दें तो इस चुनाव में मुद्दा क्या है? यह एक ऐसी बात है जिसका पता लोग़ों को नहीं चल पा रहा है।

देश के दिग्गज थैलीशाहों की मदद से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने प्रचार का ऐसा माहौल बनाया कि इस चुनाव में एक ही मुद्दा शुरू से अंत तक छाया रहा। वह मुद्दा है नरेन्द्र मोदी। प्रधानमंत्री पद का प्रत्याशी। और दूसरे दलों के लिए भी नरेन्द्र मोदी ही मुद्दा है। इसे मोदी चाहे तो अपनी उपलब्धि मान सकते हैं, पर यह जितना उनके पक्ष में है, उतना ही विपक्ष में। अपनी हार तय मान चुकी कांग्रेस अलग चाल चलने पर आमादा दिखती है। मोदी विरोधी दल एक जुट हो रहे हैं इस तथाकथित लोकतंत्र को संघ के हाथों से बचाने के लिए। इसमें नीतिश, लालू, लेफ्ट, ममता और शायद केजरीवाल भी शामिल हों जो इस सड़े-बजबजाते लोकतंत्र में ताजी हवा के झोंके की तरह आए थे। मोदी के विरुद्ध यह जो गठबंधन तैयार हो रहा है, उसके स्वाभाविक नेता के रूप में सपा प्रमुख मुलायम सिंह सामने आ रहे हैं। भूलना नहीं होगा कि सोनिया-मनमोहन सरकार को इसी मुलायम ने एकाधिक बार औंधे मुंह गिरने से बचाया है। अब देखना ये है कि चुनाव उपरांत लोकतंत्र के इस प्रहसन में कौन-सा दृश्य सामने आता है।

बहरहाल, जो भी हो, इस बार चुनाव-प्रचार का स्वरूप बड़ा ही घिनौना रहा। व्यक्तिगत आरोप, कटाक्ष के साथ-साथ संघियों ने अपने विरोधियों को पाकिस्तान तक भेज देने की बात कही, तो किसी ने मोदी के ही हज़ार टुकड़े कर देने की धमकी दे डाली। किसी ने किसी खास पार्टी को वोट न देने पर मुसलमानों का डीएनए परीक्षण करवा डालने की धमकी दी। बस एक-दूसरे की मां-बहन नहीं की, गनीमत इतनी रही।

विकास और गुजरात मॉडल की बात करते-करते मोदी और उनके सिपहसालारों ने बड़ी ही चालाकी के साथ खुला साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण कर दिया। वैसे तो हर चुनाव में साम्प्रदायिक मुद्दे उठते ही थे, पर यह चुनाव पूरी तरह साम्प्रदायिक मुद्दे पर ही लड़ा गया है। यह दिखाता है कि वाकई पार्टियों और नेताओं के सामने दिखाने के लिए ही सही, जनहित का कोई मुद्दा नहीं रह गया है। एक खास बात यह भी है कि इस चुनाव में प्रधानमंत्री पद के घोषित प्रत्याशी नरेन्द्र मोदी का जितना व्यापक विरोध हुआ है, उतना पहले शायद ही प्रधानमंत्री पद के किसी अघोषित प्रत्याशी का हुआ हो। तो इसे भी क्या 'क्रिया की प्रतिक्रिया' माना जाए?

इसका निहितार्थ मोदी और उन्हें आगे करने वालों का समझने की कोशिश करनी चाहिए। जनता को यह समझने की जरूरत है कि क्या चुनावों से उसका भला हो सकता है या बदलाव का रास्ता कोई और होगा?

जैसी प्रजा वैसा राजा

लोकसभा चुनाव के कार्यक्रम की घोषणा के साथ यह सवाल बिल्कुल फिल्मी अंदाज में पेश और चिन्तन का विषय बन चुका है कि 'कोन बनेगा प्रधानमंत्री'। पूरा पूंजीवादी प्रचार तन्त्र जिसे करोड़ों-अरबों रुपया विभिन्न पूंजीवादी पार्टियों और सरकारों से प्राप्त हो रहा है, इस सवाल को इस ढंग से पेश कर रहा है मानो अमुक के प्रधानमंत्री बनने से यह हो जायेगा और अमुक बन गया तो वह हो जायेगा। यहां सावाल यह है कि क्या किसी व्यक्ति विशेष के प्रधानमंत्री बनने से भारत के जीवन में कोई बुनियादी फर्क पड़ने वाला है। कहावत है,'जैसा राजा वैसी प्रजा'। इस कहावत को यदि पलट दिया जाय तो इतिहास की हकीकत और आज के मौजूं सवाल का ज्यादा सटीक जवाब मिल जायेगा। हमारे देश को इन चुनावों के बाद वैसा ही राजा मिलेगा जैसी आज की प्रजा है।

हमारे देश की आज की प्रजा का चरित्र क्या है। उसकी भूमि का वर्तमान दौर में क्या है और क्या ऐसे हालात में उसे वैसे ही नायक या नेता नहीं मिलेंगे जैसी उसकी स्थिति है।

सामन्ती काल की यह कहावत 'जैसा राजा वैसी प्रजा' इस हकीकत को बयां करता था कि राजा जो कि उस समय की सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था की सान्द्र और सर्वोच्च अभिव्यक्ति होता था, के देखने भर से यह अनुमान लगाया जा सकता था कि उस काल में प्रजा की स्थिति क्या हो सकती है। कहावत ठीक थी। परन्तु उस काल में भी कहा जा सकता था कि जैसी प्रजा थी वैसा ही उसे शासन मिला था। जब जनता जागृत हो गयी। जब जनता सामन्तशाही या राजशाही से घृणा करने लगी। जब जनता अपने शोषण-उत्पीड़न के जुए को पहचान गयी तो उसने अपने कंधों से राजा-महाराजाओं को उतारकर इतिहास के कूड़ेदान में फेंक दिया। ऐसी क्रांतिकारी जनता के नायक नये किस्म के लोग थे। ऐसी जनता को वैसा ही शासन मिला जैसा कि वह चाहती थी।

अठ्ठारहवीं सदी और उन्नीसवीं सदी के एक हिस्से तक यदि हम अमेरिका को देखें तो उसके नायक या शासक जार्ज वाशिंगटन, जैफरसन और लिंकन जैसे लोग थे। और फिर जैसे-जैसे अमेरिकी पूंजीवाद सड़ता गया और पूरी दुनिया के लिए विनाशकारी साबित होता गया वैसे-वैसे उसका सामाजिक ढांचा ऐसा होता गया कि वहां रीगन, क्लिंटन बुश, ओबामा जैसे ही शासक हो सकते थे और अमेरिकी प्रजा को वास्तव में अब ऐसे ही शासक तब तक मिलेंगे जब तक वह ऐसे राजाओं को बदलने का संकल्प नहीं ले लेती है और उन्हें इतिहास के कूड़ेदान में नहीं फेंक देती है।

इसी बात को एक अन्य देश रूस के उदाहरण में भी देखा जा सकता है। ठीक एक सदी पहले वहां जारशाही थी। 1917 में एक के बाद दूसरी क्रांति ने जारशाही और पूंजीवाद की नींव खोदकर समाजवाद की स्थापना की। 1917 से लेकर 1956 तक वहां समाजवाद रहा। इस दौरान जनता के नायक लेनिन आर स्टालिन जैसे महान व्यक्ति थे। 1956 में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के बाद उसे मिले ख्रुश्चेव, ब्रेझनेव जैसे सामाजिक फासीवादी और 1990 में सोवियत संघ के विघटन के बाद खुले पूंजीवादी जनतंत्र के साथ हाजिर है पुतिन जैसा व्यक्ति जो रूस को उसकी खोई साम्रज्यवादी हैसियत वापस दिलाना चाहता है और उसके लिए उसकी रूख एकदम आक्रमक है और इस वक्त यूक्रेन के हिस्से पर कब्जा करने की फिराक है। रूस की जनता इस सब पर या तो मौन है या फिर कईयों को अच्छा ही लग रहा होगा।

इसी रूसी जनता ने 1917 में क्रान्ति के बाद समाजवादी जार के द्वारा कब्जाये इलाकों को वापस कर दिया था। यूक्रेन जैसी राष्ट्रीयताओं को आजाद कर दिया था। तब रूस की जनता के नायक लेनिन थे और आज के रूस की जनता पुतिन जैसे के शासन से कम या ज्यादा सन्तुष्ट है। लेनिन स्वयं क्रांतिकारी जनता के हिस्से और मूर्त अभिव्यक्ति थे जबकि पुतिन ऐसे रूसी शासक वर्ग के नायक हैं जो रूस के भीतर और बाहर दोनों जगह के लिए खतरनाक है।

भारत के नेता, नायक या शासक वैसे ही हो सकते हैं जैसी आज के भारत की जनता है। एक ऐसा पूंजीवादी समाज जहां मध्ययुगीन धार्मिक-सामन्ती मूल्यों, औपनिवेशक अतीत की छाया हो वहां फेंकू, पप्पू जैसे ही शासक बनेंगे। वहां एक से बढकर एक झूठ बोले जायेंगे और उसे युग का सत्य मान लिया जायेगा।

लोकसभा चुनाव के बाद कैसी भी और किसी की भी सरकार बने, वह भारत के वर्तमान पूंजीवदी समाज के दशा और दिशा को नहीं बदल सकती है। वह राहत के या लोक कल्याणकारी कदम उठाये अथवा कोई भी ऐसा कदम न उठाये, पूंजीवादी समाज के पतन को रोका नहीं जा सकता है। जनता कुछ दशक और अपने को पप्पू या फेंकू से बहला सकती है। उसे वे कदम उठाने होंगे जो उसे स्वयं शासक के पद पर बिठा सके। उसे 1871 के पेरिस कम्यून के जैसे कदम उठाने होंगे। पेरिस कम्यून ने मज़दूर वर्ग सहित पूरी जनता की मुक्ति की राह खोल दी थी। पूरी जनता को हथियारबंद करना और सेना-पुलिस जैसे तंत्र के खात्मे के साथ उन्होंने नौकरशाही का भी खात्मा कर दिया था। धर्म को राज्य से पृथक कर सच्ची धर्म निरपेक्षता को सथापित किया था। सरकार चलाने वालों से लेकर नीचे तक के कर्मचारियों का वेतन एक सामान्य मज़दूर के वेतन के बराबर कर दिया था। वह स्वयं शासक बन गयी थी। वह स्वयं पर ही शासन कर रही थी। इन अर्थों में वह उस जनवाद की लोकतंत्र की स्थापना कर रही थी जो कि आदर्शों में भी आदर्श था। वह पेरिस की पूंजीवादी समाज की निरीह जनता नहीं थी वह क्रांतिकारी जनता थी। क्रान्तिकारी जनता का वह क्रान्तिकारी शासन था। और उसके नायक उतने ही उद्दात और महान थे जैसी की वह जनता थी।

सामान्य निरीह जनता के क्रांतिकारी जनता बनने में जहां मौलिक कारणों की महत्तवपूर्ण भूमिका है वहां क्रांतिकारी विचारों के सचेत प्रचार और उन्हें जनसामान्य के विचार बनाने के प्रयासों की भूमिका भी कम पड़ी नहीं है। जनता के आगे बढे हुए तत्व वर्ग सचेत मज़दूर और इतिहास की गति को समझनेवाले न्यायप्रिय इन्सानों के साथ-साथ भगत सिंह जैसे नौजवान इस कार्य को पहले भी सम्बोधित करते रहे हैं। आज भी उनकी जरूरत है। पूंजीवाद में जनता का महिमामण्डन बहुत किया जाता है। उसको देवत्व प्रदान किया जाता है और फिर पूंजीपति वर्ग अपना पूरा शोषणतंत्र और सारे अपराध उसके नाम पर चलाता और करता है। आज जनता के महिमामण्डन या पूजा की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है उसे जगाने की। उसे निरीह जनता से क्रांतिकारी जनता में तब्दील करने की। जब वह जागेगी तब वह इतिहास का निर्माण करेगी तब वह अपने उन नायकों को सृजित करेगी जो लेनिन, हो ची मिन्ह, भगत सिंह आदि, आदि के सदृश ही नहीं होंगे बल्कि उनकी परम्परा को अधुनिक व भावी समाजों में और उच्च व व्यापक स्तर तक ले जाने वाले होंगे और तब राजा-प्रजा, शासक-शासित, शोषक-शोषित जैसे शब्द बेमानी हो जायेंगे।

-नागरिक

व्यंग्य

गीता

हरिमोहन झा

खट्टर काका मेरे हाथ में 'गीता' देखकर बोले-क्या आजकल गीतापाठ करने लगे हो? तब तो तुमसे दूर ही रहना चाहिए।

मैंने चकित होकर पूछा-सो क्यों, खट्टर काका?

खट्टर काका बोले-देखो, पहले अर्जुन में मनुष्यता थी। 'ये भाई हैं, ये चाचा हैं, यह बाबा हैं, इन पर कैसे हाथ उठावें? परंतु गीता का आसव पीकर इस तरह वाणवर्षा करने लग गये कि वृद्ध पितामह तक की छाती छलनी कर दी। इसी से मुझे भी भय होता है कि कभी किसी बात को लेकर तकरार हो जाय, और तुम भी अर्जुन की तरह निस्पृह योगी बनकर सोचने लगो-

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावक:

''खट्टर काका की आत्मा को तो शस्त्र काट ही नहीं सकता है, तो फिर क्यों न एक गडांसा कसकर लगा दिया जाय?''

और काकी रोना-धोना शुरू करें,तो समझाने लगो कि-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहाति नरोपराणि

''काकाजी का चोला बदल गया है। नया शरीर मिल गया है। आप खुश होकर सोहर गायें। विलाप क्यों कर रही हैं? यदि गांव के नवयुवक गीता के उपदेश पर चलने लगें, तो कितने चाचा मारे जायेंगे, कितनी चाचियां विधवा होंगी, इसका ठिकाना नहीं। इसीलिए मैं हाथ जोड़ता हूं। पढ़ना ही है तो गीतगोविंद पढो, मगर गीता का चस्का मत लगाओ।

मैंने कहा,-खट्टर काका, लोग कहते हैं कि गीता अहिंसा-वैराग्य की शिक्षा देती है।

खट्टर काका बोले-अजी, मैं तो सीधी बात जानता हूं। यदि अर्जुन गीता का उपदेश सुनने के बाद गांडीव फेंककर गेरुआ वस्त्र धारण करते, कवच उतारकर कमंडल ग्रहण करते और कुरुक्षेत्र छोड़ वाराहक्षेत्र का मार्ग पकड़ते, तब मैं मान लेता कि गीता में अहिंसा-वैराग्य भरा है। परंतु वह तो मत्स्यवेध की तरह भाई-बंधुओं का मस्तक-वेध करने लगे!

अजी, एक तो यों ही आजकल बर्छी-भाले निकलते रहते हैं, अगर उन पर गीता की सान चढ गयी, तो प्रत्येक गांव कुरुक्षेत्र बन जायेगा। अतएव मैं हाथ जोड़ता हूं, अभी गर्म खून में गीता मत पढो।

मैंने कहा-खट्टर काका, हो सकता है कि गीताकार का वास्तविक अभिप्राय कुछ और हो।

खट्टर काका बिगड़कर बोले-दूसरा अभिप्राय मैं कैसे समझूं? सवयं गीताकार ही तो सारथी बनकर आगे बैठे थे। तब उन्होंने रथ मोड़ क्यों नहीं लिया? वह कहते-''ओ अर्जुन! मैंने तुम्हें इतना ज्ञान दिया है कि यह शरीर नश्वर है, संसार क्षणभंगुर है, हस्तिनापुर की क्या हस्ती? एक दिन मिट्टी में मिल जायेगा। इस कारण तुम रक्त की धारा क्यों बहाओगे? सांसारिक सुख तुच्छ है तुम राज्य की कामना छोड़ दो। क्या गद्दी की खातिर वृद्ध पितामह एवं पूज्य द्रोणाचार्य पर तीर छोड़ना तुम्हें शोभा देगा? यही न होगा कि लोग हंसेगे कि क्षत्रिय होकर मैदान छोड़ दिया। परंतु जो यथार्थ ज्ञानी होते हैं, वे निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते। छोड़ों इस झमेले को, और चलो मेरे साथ हिमालय।'' लेकिन ये सब बातें तो उन्होंने कहीं नहीं। उलटे, उन्होंने अर्जुन को लड़ने के लिए भड़का दिया। और तुम समझते हो कि गीता में अहिंसा और वैराग्य भरा है। हाय रे बुद्धि!

मैंने कहा-खट्टर काका, बड़े-बड़े लोग गीता के द्वारा विश्व-शांति स्थापित करना चाहते हैं और आपको उसमें युद्ध का संदेश मिलता है?

खट्टर काका ने मुस्करा कर कहा-तुमने आल्हा सुना है? किस प्रकार गाकर जोश बढाया जाता है-आखिर राम करै सो हो, एक दिन सबको मरना होगा। और, उसी बोल पर कितने कटकर मर जाते हैं। मुझे तो वही ललकार गीता में भी सुनायी पड़ती है-

लेकिन ''कभी तो मरना ही है, इसलिए अभी मर जाओ''-यह तर्क तो मुझे नहीं जंचता।

मैंने कहा-खट्टर काका, भगवान का कहना है कि जीव का कभी नाश नहीं होता है।

खट्टर काका बोले-यदि जीव का नाश नहीं होता है, तो खून की सज़ा फ़ांसी क्यों होती है? श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं कि-

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिता:

परंतु जब अभिमन्यु का वध होता है, तो वह ज्ञान कहां विलीन हो जाता है? यदि वास्तव में यही बात सत्य है, तब फ़िर जयद्रथ से बदला लेने के लिए इतना प्रपंच क्यों रचा गया? उस समय यह वचन क्यों भूल गये कि-

समस्त उपनिषदों का मंथन कर कृष्ण भगवान ने गीता रूपी अमृत निकालकर अर्जुन रूपी बछड़े को पान कराया है।

खट्टर काका मुस्कराते बोले-हां! अर्जुन तो बछिया के ताऊ थे ही। तभी तो श्रीकृष्ण ने उन्हें पुचकार कर लड़ाई में जोत दिया। एक तरह देखा जाय तो अर्जुन को फुसलाने के लिये ही गीता की रचना हुई है। श्रीकृष्ण को लड़ाने की इच्छा थी। अर्जुन की पीठ ठोंक दी, और स्वयं महाभारत का तमाशा देखते रहे। अर्जुन पर इस तरह श्याम-रंग चढ गया कि उन्होंने संपूर्ण वंश को मटियेमेट कर दिया।

मैने कहा-खट्टर काका, अर्जुन ने अनासक्त होकर युद्ध किया। राज्य के लोभ से नहीं।

खट्टर काका व्यंग्य करते हुए बोले-हां! हस्तिनापुर की गद्दी तुम्हारे ही नाम से वसीयत कर गये हैं! अजी, यदि आनासक्त रहते, तो सौ चचेरे भाइयों के शोणित से अपना राज्याभिषेक करते! हाय रे दिल्ली! तेरे चलते इतना रक्तपात हुआ कि आज तक किले का रंग लाल है।

मैंने कहा-धन्य हैं, खट्टर काका! कहां से कहां शह चला देते हैं!

खट्टर काका अपनी धुन में कहने लगे-देखो, श्रीकृष्ण को लड़ाना था और अजुर्न को अपनी बुद्धि थी ही नहीं। इसी से जो-जो मन में आया, कृष्ण कहते गये-''शरीर नाशवान् है, इसलिए युद्ध करो। अत्मा अमर है, इसलिये युद्ध करो। क्षत्रिय हो, इसलिए युद्ध करो। नहीं लड़ने से निंदा होगी, इसलिए युद्ध करो।''

खट्टर काका के होंठों पर मुस्कान आ गयी। बोले-श्रीकृष्ण अर्जुन को तो यह उपदेश देते हैं कि क्षत्रिय के लिए रण छोड़कर भाग जाने से मरण अच्छा है। और, स्वयं जो रण छोड़कर भागे सो अभी तक रणछोड़ कहला रहे हैं। इसी को कहते हैं-परोपदेशे पांडित्यम्। लेकिन अर्जुन की इतनी बुद्धि कहां कि जवाब दे सकते! गटगट सुनते गये। और, जब सब कुछ सुनकर अर्जुन के पल्ले कुछ नहीं पड़ा, तब कृष्ण ने अपना विकराल रूप दिखाकर अर्जुन को डरा दिया-'यदि उस तरह नहीं समझोगे, इस तरह समझो।''

खट्टर काका को हंसी लग गयी-बोले मुझे एक बात याद आती है। एक बार तुम्हारी चाची स्नान करने जा रही थीं। उनके साथ एक पांच साल का बच्चा था। वह भी साथ जाने के लिये जिद्द करने लगा। मैंने उसे बहुत तरह से समझाया कि ''नदी में तेज बहाव है, वहां बच्चे डूब जाते हैं। पानी में मगर रहते हैं, पकड़ लेते हैं। मत जाओ।'' जब वह किसी तरह नहीं माना, तब रामलीला वाले राक्षस का चेहरा लगाकर उसे डरा दिया। वह देखते ही जो सीधा हुआ, सो फ़िर क्यों मचलेगा? ऐ भाई! मुझे तो उस बच्चे में और अर्जुन में कोई खास अंतर नहीं जान पड़ता है।

मैंने कहा-खट्टर काका, गीता में तो इतना ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग भरा है...

खट्टर काका बोले-सभी योगों का लक्ष्य यही है कि तस्मात् युध्यस्व भारत। यानी ''कौरवों को मारो।'' अर्जुन किसी तरह लड़ने को तैयार हो, इसीलिए इतना सारा निष्काम कर्म और अनासक्ति योग का महाजाल रचा गया। उसमें अर्जुन की बुद्धि उलझ गयी और श्री कृष्ण ने उन्हें जैसे नचाना चाहा, नचाया। परंतु जिसे समझने की शक्ति है, वह तो भगवान की चालाकी समझेगा ही।

मैंने कहा-खट्टर काका, भगवान् ने अर्जुन को कैसे फुसलाया? मेरी समझ में तो नहीं आता। खट्टर काका बोले-तुम्हारी क्या बिसात? बड़े-बड़े पंडितों की समझ में नहीं आता। परंतु मुझे तो बिल्कुल साफ नज़र आता है। भगवान् कहते हैं कि-

'जो सारी इच्छाओं का त्याग कर देते हैं, वे ही यथार्थ ज्ञानी है।' तब फिर राज्य और स्वर्ग का प्रलोभन क्यों देते हैं?

''हे अजुर्न! यदि मरोगे तो स्वर्ग मिलेगा। जीतोगे, तो राज्य मिलेगा। तुम्हारे दोनों हाथों में लड्डू हैं। अतएव उठो और युद्ध करो।''

खट्टर काका मुस्कराते हुए बोले-अर्जुन ने तर्कशास्त्र नहीं पढा था, इसी कारण उभयत: पाश में बंध गये। यदि मैं रहता, तो कहता-'हे कृपानिधान! एक तृतीय कोटि भी तो हो सकती है कि वे अर्जुन को पकड़कर बंदी बना लें,' तब तो माया मिली न राम! परंतु अर्जुन तो सीधे धनुर्धर थे। किसी पक्षधर से भगवान को भेंट होती, तब न! मैं तो पूछता-'ऐ महाराज! जब सारे मनोरथ व्यर्थ हैं, तब फिर आप यह रथ क्यों चला रहे हैं?'

मैंने कहा-खट्टर काका, आप हर जगह अपना तर्कशास्त्र लगा देते हैं!

खट्टर काका बोले, कैसे न लगाऊं, जी? यही तो अपने देश की मुख्य विद्या है। खंडन में ऐसी सूक्ष्म दृष्टि किसकी हो सकती है?

खट्टर काका सरौते से सुपारी काटते हुए बोले- देखो, एक स्थान पर तो श्रीकृष्ण उपदेश देते हैं कि-

''निंदा-प्रशंसा, दोनों को एक समान समझना चाहिए।'' और दूसरी जगह यह भी कहते हैं कि-

''युद्ध नहीं करोगे तो तुम्हारी निंदा होगी, इससे तो मर जाना ही अच्छा है।' एक बार तो अनासक्त कर्म की शिक्षा देते हैं कि-''हार-जीत दोनों को बराबर समझकर लड़ो।''

और बाद में जीत का लोभ भी देते हैं कि -

''हे अर्जुन! उठो, यश प्राप्त करो और शत्रु को जीतकर राज्य भोगो।''

अब तुम्हीं कहो कि जब सुख-दुख, जय-पराजय, यश-अपयश, सब समान हैं, तब फ़िर भगवान् विजय एवं यश का प्रलोभन क्यों देते हैं?

मुझे चुप देखकर खट्टर काका बोले-अजी, एक बात मैं पूछता हूं। भगवान् कहते हैं कि-ईश्वर ही अपनी माया के प्रभाव से सबको कठपुतली की तरह नचा रहे हैं। यदि यही बात सत्य है, तब फिर इतनी माथा-पच्ची की क्या जरूरत थी? सीधे अपना यंत्र घुमा देते। उनकी इच्छा के सामने अर्जुन की क्या चलती? तब फिर यह क्यों कहते हैं कि-''तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो।''

और, यदि यही बात थी, तो इसी पर कायम रहते।

फिर ऐसा क्यों कि-''तुम सभी धर्म छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ, मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूंगा।''

अजी, ऐसा तो कोई पंडा, पुरोहित या पादरी बोले भगवान् को क्या ऐसा कहना शोभा देता है? और यदि अंत में यही बात कहनी थी, तो फ़िर सात सौ श्लोकों की क्या जरूरत थी? एक ही श्लोकार्ध में कह देते-

(हे अर्जुन! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं इसलिए युद्ध करो।')

मैंने कहा-खट्टर काका, मैं तो समझता हूं कि समस्त गीता का निष्कर्ष है-निष्काम कर्म।

खट्टर काका बोले-अजी, यही तो मेरी समझ में नहीं आता है। इच्छाकृत कर्म भी कहीं निष्काम होता है? जो भी कार्य किया जाता है, किसी-न-किसी कामना से प्रेरित होकर। 'सारी कामनाओं का त्याग कर दें'-यह भी तो एक कामना ही हुई। निष्काम कर्म कहने में वदतो व्याघात दोष है।

मैंने कहा-खट्टर काका, आपके तर्क में मैं कहां तक टिक सकता हूं? परंतु जीवनमुक्त को तो कोई भी कामना नहीं रहती है।

खट्टर काका मुस्कुराते बोले-भई, मुझे तो आज तक कोई जीवनमुक्त नहीं मिले। यदि कोई मिल जाते तो एक सोंटा लगाकर देखता कि उनकी स्थितप्रज्ञता कहां तक कायम रहती है। अजी, ये सब कहने-सुनने की बातें हैं।

मैंने गंभीर होकर कहा-तब क्या आपका ख्याल है कि भगवान् ने अर्जुन को लड़ाने के लिये गीता रची है?

खट्टर काका ठठाकर हंस पड़े। एक चुटकी सुपाड़ी का कतरा मुंह में डालकर बोले-अजी, तुम कहां हो? ये सब कवि की कल्पनाएं हैं। कवि को तो कोई आधार चाहिए। अपने काव्य का चमत्कार दिखलाने के लिए किसी ने रामचंद्रजी का प्रसंग लेकर रामगीता बना दी, किसी ने शिव का प्रसंग लेकर शिवगीता बना दी, किसी ने गोपी का प्रसंग लेकर गोपीगीता बना दी। इसी तरह किसी ने अपना ज्ञान बघारने के लिय कुरूक्षेत्र की पृष्ठभूमि में भगवद्गीता की रचना कर दी। तुम्ही बताओं की घमासान युद्ध के अट्ठारह अध्याय गीता कहने या सुनने की फुर्सत किसको थी? क्या उस बीच में अट्ठारह अक्षौहिणी सेना त्राटक मुद्रा लगाए कुंभक प्राणायाम साध रही थी? और, संजय की आंख में टेलिविजन लगा हुआ था? कवि को किसी व्याज से सांख्ययोग एवं वेदांत की पंडिताई छांटनी थी, सो उन्होंने छांटी है।

मैंने कहा-खट्टर काका, तो आपकी दृष्टि में गीता से कोई लाभ नहीं?

खट्टर काका मुस्कराते हुए बोले-लाभ क्यों नहीं? एक लाभ तो यही कि इससे परिवार-नियोजन में सहायता पहुंच सकती है।

मैंने पूछा-सो कैसे, खट्टर काका?

खट्टर काका बोले-देखो, गीता का संदेश है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

इस श्लोक में-संतति निरोध का मंत्र छिपा है।

मैंने चकित होकर पूछा-सो कैसे, खट्टर काका?

खट्टर काका बोले- ''केवल कर्म करते जाओ, फल की कामना मत रखो।'' यहां फल का अर्थ संतान समझो। अब मैं ज़्यादा खोलकर कैसे कहूं? चचा जो हूं!

मैंने कहा-खट्टर काका, आप तो हर बात में विनोद की पुट दे देते हैं। गीता का उपदेश है कि अनाशक्त होकर कर्म करना चाहिए।

खट्टर काका बोले-हां जी। इस उपदेश पर अमल किया जाए तो देश में क्रांति नहीं होगी। कोल्हू के बैल को गुड़ की चेकी से क्या प्रयोजन? यदि इतना ज्ञान मज़दूरों को जो जाय तो फिर कारखानों में हड़ताल क्यों होगी? लेकिन आजकल तो देश में उलटी गीता चल पड़ी है-

फलेष्वेवाधिकारस्तु मा कर्मणि कदाचन

इस निष्कर्म भोगवाद की लहर को रोकने के लिये एक नयी गीता देश को चाहिए, जो कर्म और फल दोनों को साथ लेकर चले। वह गीता अब कुरूक्षेत्र में नहीं, कृषिक्षेत्र में बनेगी। उस गीता से कुरु (वंश) का अंत हुआ था, इस गीता से कुरु मंत्र का उदय होगा। तभी तो सुजलाम्, सुफलाम् शस्यश्यामलाम् वाला राष्ट्र-गीत सार्थक हो सकेगा। आगे की पीढियां पूछेंगी-

कर्मक्षेत्रे कृषिक्षेत्रे समवेताश्चिकीर्षव:

मामका: पूर्वजाश्चैव किमकुर्वत भारते?

गतांक की चीर-फ़ाड़

मज़दूर मोर्चा के 1-15 मई 2014 के अंक में प्रकाशित लेख ''गुजराती 'चौकीदार' के जलबे! पी एम बन कर देश बेचने को आतुर नरेन्द्र भाई मोदी'' गुजरात विकास के मद्देनज़र काफ़ी चौंकानेवाला है। इस लेख से पर्दाफाश हो गया है कि किस प्रकार मोदी ने पूंजीपतियों/उद्योगपतियों को लगभग 17.50 लाख वर्ग मीटर भूमि वहां के बाजार भाव और सर्कल रेट से भी कम, कौड़ियों के मोल हवाले कर दी और सरकारी खजाने को कई हज़ार करोड़ों रुपयों की चपत लगा दी। यदि यह लेख चुनाव प्रचार शुरू करने के समय अथवा मतदान के पहले प्रकाशित हो गया होता तो जनता के सामने मोदी के गुजरात विकास मॉडल की पोल खुल जाती। इस लेख से मीडिया जगत में मज़दूर मोर्चा का स्तर काफ़ी ऊंचा हो गया है, जबकि शेष सारे मीडिया ने इस सच्चाई को नज़रअंदाज कर दिया है और मोदी की महिमा मंडन करने में लगा है। भूमि आबंटन का दूसरा पक्ष उपेक्षित रह गया है। बहुत से किसानों, पशु पालकों, मछुआरों आदि को उनकी ज़मीन से बेदखल किया गया और ऐसे विस्थापितों की संख्या गुजरात में काफ़ी तेज़ी से बढी है। पर्यावरण की रक्षा पर ध्यान न देते हुए वहां खतरनाक तथा प्रदूषक संयत्र लगाए जा रहे हैं। किसानों, मज़दूरों, आदिवासियों की वास्तविक स्थिति को जाने बिना ही मोदी मॉडल की सफलता के गुणगान किए जा रहे हैं। लेख 'सतरोल खाप ने भ्रूण-हत्या पर मोहर लगाई' द्वारा सतरोल खाप के निर्णय का सटीक विश्लेषण किया गया है। वास्तव में इस निर्णय से स्त्रियों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होने वाला है। गांव तथा पड़ोस के गांव में आपस में विवाह संबंध नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त अन्तर्जातीय विवाह भी असंभव होंगे क्योंकि अन्तर्जातीय विवाह के लिए अभिभावकों की अनुमति अनिवार्य होगी जो कि लगभग असंभव है। वास्तव में मूल समस्या तो ज्यों की त्यों बनी हुई है। समाज को सामंती जकड़न से बाहर निकलना होगा और खापों का वर्चस्व कम करना होगा। नारी के प्रति दृष्टिकोण के संदर्भ में लेख 'राजनीति में मर्दानगी' तथा 'यौन हिंसा और पूंजीवाद के भ्रामक नारे' काफ़ी प्रेरणा दायक हैं। पुलिस विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार और पुलिस की दबंगई संबंधित लेख अक्सर मज़दूर मोर्चा में प्रकाशित होते रहते हैं, परंतु पुलिस विभाग व सरकार के कानों पर जूं तक नहीं रेंगेती। लेख 'हत्या के झूठे मुकदमें में लपेटने से बाज नहीं आ रही पुलिस,' 'भेंसरावली में ठेका बंद शराब खुली' तथा 'गांव के ठोंडे और पुलिस आप के विरुद्ध एकजुट' द्वारा पुलिस की दबंगई और पुलिस, दबंगों व नेताओं के गठजोड़ को उज़ागर किया गया है। आम आदमी तो छोड़ो पुलिस अपने विभाग के आदमियों/पीड़ितों को भी नहीं छोड़ती। दिल्ली में एक रोड रेज के दौरान एक लेडी सबइंस्पैक्टर और उसके साथी एस आई की पिटाई होने व लेडी ए एस आई की टी शर्ट फ़ाड़ने पर उनके द्वारा की गई शिकायत के बावजूद राजौरी गार्डन पुलिस ने छेड़खानी का केस दर्ज नहीं किया और जब पीड़ित एस आई ने थाने में पत्रकारों से बात करने की कोशिश की तो थाने के ए एस आई ने बालों से पकड़कर उसे खींचा जबकि वह पहले से ही जख्मी थी। उल्टा उन्हीं पर लापरवाही से कार चलाने और मारपीट करने के आरोप में केस दर्ज कर उनको गिरफ़्तार कर बाद में जमानत पर छोड़ दिया। शिक्षा क्षेत्र से संबंधित लेख 'निजी स्कूलों से जूझते अभिभावक मंच के लिए करने को बहुत कुछ है' तथा 'सत्या इन्जीनियरिंग कॉलेज: मालिकों की गुंडागर्दी प्रोफ़ेसरों को दौड़ा-दौड़ा कर पीटा' मुख्यमंत्री हुड्डा द्वारा हरियाणा को शिक्षा का हब बनाने का श्रेय लेने के दावे पर एक गहरी चपत है। ये घटनाएं शिक्षा को निजी हाथों में सौंपने का परिणाम है। सत्या इन्जीनियरिंग कॉलेज की घटना इंगित करती है कि औद्योगिक कारखानों की तरह शिक्षण संस्थाओं में भी मालिकों द्वारा खुलकर गुंडागर्दी की जाने लगी है जिसका कड़ा प्रतिरोध करने की आवश्यकता है। अन्य लेखों का भी स्तर काफ़ी अच्छा है। **-जुगल किशोर गुप्ता**

इ एस आई सी मेडिकल कॉलेज को बी के अस्पताल से जोड़ मज़दूरों के साथ बड़ा धोखा

फ़रीदाबाद (म.मो.) मई दिवस की पूर्व संध्या पर ई एस आई मेडिकल कॉलेज के साथ बादशाहखान अस्पताल को जोड़कर उन मज़दूरों के साथ हरियाणा सरकार ने बहुत बड़ा धोखा किया है जिनके वेतन का साढे 6 प्रतिशत हर माह इलाज के नाम पर ई एस आई सी झटक लेती है। सन् 1950 में केन्द्र सरकार द्वारा ई एस आई सी (कर्मचारी राज्य बीमा निगम) की स्थापना औद्योगिक मज़दूरों को सामाजिक सुरक्षा एवं बेहतर चिकित्सा सेवायें प्रदान करने के उद्देश्य से की गयी थी न कि किसी प्रकार के शिक्षण संस्थान चलाने के लिये। जो मेडिकल कॉलेज सरकार को अपने बजट से बनाने व चलाने चाहिये उनको ई एस आई सी बजट से बनाने व चलाने के पीछे सरकार का खोखला तर्क है कि इससे मज़दूरों को और अधिक उच्च श्रेणी की बेहतर चिकित्सा सुविधा मिल सकेगी।

करीब 5 साल पहले फ़रीदाबाद के मज़दूरों को यही सब्ज़ बाग दिखा कर मेडिकल कॉलेज की नींव रखी गयी थी। क्षेत्र के 5 लाख से अधिक मज़दूर परिवारों को झांसा दिया गया कि 250 बिस्तरों वाला 45 साल पुराना मौजूदा अस्पताल जिसे ई एस आई सी व राज्य सरकार ने मिल कर नाकारा बना दिया था, सही ढंग से चलने लगेगा। क्योंकि इसे मेडिकल कॉलेज से जोड़ कर ई एस आई सी निगम खुद चलायेगी। लेकिन जब से निगम ने इसे अपने हाथों में लिया है, इसका और भी बेड़ा गर्क कर दिया गया।

वास्तव में न तो सरकार की और न ही निगम की अस्पताल चलाने में कतई कोई रूचि है। अस्पताल तो इसलिए चलाना पड़ रहा है कि मेडिकल कॉलेज की स्वीकृति देने वाली एम सी आई (मेडिकल काऊंसिल ऑफ़ इन्डिया) की शर्त है कि 100 सीटों वाले कॉलेज के साथ शुरूआत में 300 बिस्तरों का अस्पताल जुड़ा होना जरूरी है। यदि यह मजबूरी न हो तो ये लोग अस्पताल कभी बनाये ही नहीं।

30 सितम्बर 2013 को जब निगम द्वारा मेडिकल कॉलेज के लिये आवेदन किया गया तो उसमें कहा गया था कि उनके पास 300 बेड का अस्पताल (एन एच-3) है और उसी के साथ जोड़ कर कॉलेज बनाया जा रहा है। लेकिन सरकार तथा उसकी भ्रष्ट एवं निकम्मी अफ़सरशाही की हरामखोरी के चलते इन 9 महीनों में न तो पर्याप्त मात्रा में डॉक्टर भर्ती किये गये और न ही अन्य स्टाफ। डॉक्टरों की भर्ती को लेकर तो फ़िर भी कुछ न कुछ कतर-ब्योंत एवं नाटकबाज़ी चल रही है, अन्य स्टाफ़ भर्ती करने हेतु तो वह भी नहीं हो रही। इसके चलते जो 50-60 डॉक्टर भर्ती कर भी लिये गये हैं वे भी कुछ खास कर पाने की स्थिति में नहीं हैं।

इस अस्पताल के लिए आवश्यक कम से कम 750 पैरामेडिकल स्टाफ़ भर्ती करने हेतु पहली दिसम्बर 2012 को योग्य आवेदकों

पैरामेडिकल स्टाफ़ की भर्ती का मामला भी एक प्रहसन बना हुआ है। 14 फरवरी 2014 में कार्पोरेशन ने तय किया कि ठेके पर भर्ती करनी है। उसके लिये टेंडर प्रक्रिया की कार्यवाही गत 4 माह से चल रही है। गत माह जब अस्पताल वालों ने टेंडर बना दिया तो इसी अस्पताल के राजीव लाल नामक एक बाबू, व उनकी पूरी टीम जो वित्तीय मामले देखते हैं, ने उसमें 17 आपत्तियां लगा दीं; जबकि टेंडर बनाते वक्त उससे कहा गया था कि वह टेंडर आपत्तिमुक्त ढंग से बनवाये तो उसने लिख कर दिया था कि उसके पास समय नहीं है।

से आवेदन मांगे गये थे। करीब 17000 आवेदकों ने बैंक ड्राफ़्ट सहित आवेदन भेजे थे। निगम द्वारा उन्हें भर्ती करने की प्रक्रिया शुरू करने के बजाय जनवरी 2013 में उस पूरी प्रक्रिया पर ही रोक लगा दी गयी। जिसका परिणाम आज यह है कि 300 बेड के इस अस्पताल में 7 50 पैरामेडिकल स्टाफ़ की जगह करीब 60 लोग़ों का स्टाफ़ है। ऐसे में जो 50-60 डॉक्टर नये भर्ती भी कर लिये गये हैं वे भी सिवाय ओ पी डी चलाने के कुछ नहीं कर सकते। यानी कि मरीज भर्ती नहीं किये जा सकते।

इसके अलावा 300 बेड के अस्पताल के लिये जो साजो-सामान व उपकरण आदि चाहियें उन्हें खरीदने की भी कोई प्रक्रिया शुरू नहीं की गयी है। इनके अभाव में भी डॉक्टर क्षमता के मुताबिक काम कर सकने में असमर्थ हैं। इन सब चीज़ों को तो छोड़िये इस अस्पताल में मरीजों के लिये 300 चारपाइयां तक भी नहीं हैं। सूत्र बताते हैं कि टूटी-फूटी सब पुरानी चारपाइयों कों मिलाकर फ़िलहाल यहां 150 चारपाई भी पूरी नहीं हैं। सरकार एवं ई एस आई कार्पोरेशन और तो क्या करेगी इससे अभी तक यहां पूर्णकालिक एम एस (मेडिकल सुपरिंटेंडेट) तक भी नियुक्त नहीं किया जा सका जो कि एम सी आई की एक पहली बड़ी शर्त है।

सूत्रों से मिली भरोसेमंद जानकारी के अनुसार अक्टूबर 2013 से 31 मार्च 2014 तक इस अस्पताल को चलाने के लिये कुल 28 करोड़ रुपये की स्वीकृति दी गयी थी। 8 करोड़ साज़ो-सामान व उपकरण आदि की खरीदारी के लिये तथा 20 करोड़ अस्पताल के रोजमर्रा के खर्चों के लिये। उक्त 8 करोड़ में से तो एक पैसा भी खर्च नहीं हुआ और 20 करोड़ में से मात्र 3 करोड़ ही खर्च किये जा सके, जबकि अस्पताल हर मामले में पूर्णतया अभावग्रस्त है। इस सारे ड्रामें में एक मजेदार बात यह भी है कि उक्त 28 करोड़ की राशि कब स्वीकृत की गयी और इस बाबत किसके नाम कब कोई पत्र जारी हुआ कोई नहीं जानता। यानी कि उक्त राशि जारी करनें का पत्र कार्पोरेशन के नालायक अधिकारियों ने फ़ाइलों में इस कदर दबा दिया कि उसका पता ही अप्रैल 2014 में चला।

पैरामेडिकल स्टाफ़ की भर्ती का मामला भी एक प्रहसन बना हुआ है। 14 फरवरी 2014 में कार्पोरेशन ने तय किया कि ठेके पर भर्ती करनी है। उसके लिये टेंडर प्रक्रिया की कार्यवाही गत 4 माह से चल रही है। गत माह जब अस्पताल वालों ने टेंडर बना दिया तो इसी अस्पताल के राजीव लाल नामक एक बाबू, व उनकी पूरी टीम जो वित्तीय मामले देखते हैं, ने उसमें 17 आपत्तियां लगा दीं; जबकि टेंडर बनाते वक्त उससे कहा गया था कि वह टेंडर आपत्तिमुक्त ढंग से बनवाये तो उसने लिख कर दिया था कि उसके पास समय नहीं है।

इस तरह की तमाम छोटी-बड़ी हरकतों के चलते अस्पताल चलने में नहीं आ रहा। जनविरोधी हुड्डा सरकार ने अपनी निकम्मी व हरामखोर अफ़सरशाही की नकेल कस-कस कर अस्पताल को एम सी आई की शर्तों के अनुसार चालू करने के बजाय, चले चलाये बी के अस्पताल को मेडिकल कॉलेज के साथ जोड़ने का नाटक कर डाला। यह न केवल एम सी आई के साथ एक धोखा है बल्कि मज़दूरों के साथ और भी बड़ा धोखा है।

सहगल अपहरण केस तो सुलझा पर कारण अभी तक है उलझा

फ़रीदाबाद (म.मो.) दिनांक 9 मई को दोपहर ढाई बजे एन आई टी, 5 नम्बर के बी ब्लॉक से एक 10 वर्षीय बालक युवराज सहगल का अपहरण हो गया। वह उस वक्त अपनी स्कूल बस से गली के मोड़ पर उतर कर हर रोज़ की तरह अपने घर जा रहा था पुलिस ने 36 घंटे में चारों अपहरणकर्ताओं को गिरफ़्तार कर बालक को सकुशल छुड़ा लिया। इसी खुशी में सी पी (पुलिस कमिश्नर) अरशिंदर चावला ने अपनी पीठ थपथपाने के लिये एक बड़ी प्रेस वार्ता का आयोजन कर डाला।

अपहरण का मामला सही सलामत सुलझ गया अच्छी बात है। लेकिन दो सवाल अनसुलझे छोड़ गया-अपहरण क्यों और कैसे हुआ तथा इतनी जल्दी सुलझ कैसे गया?

गौरतलब है कि मौका-ए-वारदात शहर के व्यस्ततम स्थानों में से एक है। थाना एन आई टी से इसकी दूरी मात्र आधा किलोमीटर है इतना ही नहीं वारदात के समय यानी ठीक ढाई बजे, इलाके में गश्त करने के नाम पर निकले हुए ए एस आई सुरेन्द्र स्वामी, एक अन्य ए एस आई, एक हवलदार तथा एक राइडर (सिपाही), घटनास्थल से मात्र 15 मीटर की दूरी पर स्थित हजारा प्रापर्टीज़ नामक दुकान में बैठ कर क्या कर रहे थे? दोनों ए एस आई तथा हवलदार साहब दुकान के भीतर कर्मकांड में व्यस्त थे तो राइडर बेचारा बाहर अपनी बाइक पर तैयारी पोजीशन में तैनात बैठा था। घटनास्थल के इतने नज़दीक व इतनी पुलिस की मौजूदगी में अपहरण हुआ तो हुआ कैसे? यह पुलिस की कार्यशैली पर एक बड़ा प्रश्न चिन्ह है। जाहिर है अपहरणकर्ताओं ने इन पुलिस वालों को देखा भी जरूर होगा लेकिन देखने के बावजूद भी उन्हें पुलिस से कोई डर क्यों नहीं लगा? उत्तर स्पष्ट है, जब पुलिस वाले पुलिसिंग छोड़ कर दूसरे ही कर्मकांडों में जुटे हों तो फ़िर डर काहे का।

बच्चा जल्दी व सकुशल पुलिस ने बरामद कर लिया बहुत अच्छी बात है;

उगाही करालो या अपराध नियंत्रण

परन्तु क्या इस तरह के सभी मामलों में पुलिस इतनी ही चुस्ती-फुर्ती दिखाती है? इलाके के चश्मदीद बतातें हैं कि सूचना मिलने के आधे घंटे के भीतर सी पी समेत सारे पुलिस अधिकारी घटनलास्थल पर पहुंच गये थे। पुलिस के अलावा क्षेत्र के विधायक एवं मंत्री महेन्द्र प्रताप, पूर्व मन्त्री ए सी चौधरी, मेयर अशोक अरोड़ा सहित शहर के अनेक गण मान्य लोग मौके पर पहुंचे थे। बालक युवराज के दादा गुड़गांव स्थित मेदांता अस्पताल के मालिक डॉक्टर त्रेहन के निजी सहायक हैं इसलिए डॉक्टर त्रेहन भी यहां पहुंचे थे और शायद इसीलिए राज्य पुलिस प्रमुख श्रीनिवास वशिष्ठ के आदेश पर गुड़गांव तक की पुलिस को बालक की खोज में लगाया गया था, जिसमें पुलिस को तुरंत सफ़लता भी मिल गयी।

इसके विपरीत इसी माह की 3 तारीख को बल्लबगढ से गौरव मित्तल व 5 जनवरी 2010 को इसी 5 नम्बर से अपहृत हुए पीयूष वैद्य का अभी तक कोई सुराग नहीं। इन दोनों कें बारे में किसी पत्रकार ने सी पी से पूछने का प्रयास भी किया तो उन्होंने सुनने तक की जरूरत नहीं समझी, कोई कार्यवाही तो दूर की बात। ऐसा ही मामला करीब 3 माह पूर्व हुई उस हॉकर की हत्या का है जो सुबह 6 बजे सेक्टर 46 में अखबार बांटते वक्त मारा गया था। क्या चावला की पुलिस केवल प्रभावशाली लोग़ों के लिये ही काम करती है?

ए एस आई सुरेन्द्र स्वामी बना चुलबुल पांडे

सल्लू मियां की फ़िल्म दबंग की अधकचरी नकल के साथ तमाम अवैध धंधों को प्रोत्साहित करने में जुटा है थाना एन आई टी में तैनात यह थानेदार। इसी थाने में हवलदारी करने के बाद इसी साल थानेदार बने स्वामी का मन 5 नम्बर के अलावा कहीं और नहीं लगता। सेक्स रैकेट से लेकर शराब जुआ, सट्टा चलाने वाले सभी तरह के छोटे-बड़े अपराधियों व धंधेबाज़ों में इसकी अच्छी पैंठ है। इस क्षेत्र की गलियों में फ़िल्मी 'दबंग' बनकर आशिकी करना व लड़कियां फांसना इसका शौक है। अपने इन शौकों को पूरा करने के लिये यह सरकार द्वारा दिये गये डंडे व कलम का इस्तेमाल पूरी बेशर्मी के साथ करता है। तफ़्तीश के लिये मिलने वाले किसी भी केस में इसकी पहली नज़र दोनों पक्षों के घरों में जवान लड़कियों को लताशती है, उसी के बाद तफ़्तीश की दिशा तय होती है।

ऐसा भी नहीं है कि स्वामी की तमाम हरकतों की जानकारी उच्चाधिकारियों को नहीं है। यदि कोई उच्चाधिकारी इनसे अनभिज्ञ होने का दावा करता है तो वह अपने पद के लायक ही नहीं है। भीतर की जानकारी रखने वाले सूत्र बताते हैं कि अपनी तैनाती व हरकतें कायम रखने के लिये यह थानेदार तमाम सम्बन्धित अधिकारियों को खुश रखने के लिये उनकी तमाम फ़र्माईशों व शौकों को पूरा करने के सामान उपलब्ध कराने में माहिर है।

इतना ही नहीं जनता में अपनी व अपने अफ़सरों की छवि बनाने की कलाकारी में भी इसे अच्छी-खासी महारत है। इस काम के लिये इसने अपने जैसे कुछ तथाकथित समाजसेवियों को भी गांठ रखा है। इन्हीं समाजसेवियों में से एक नरेश गोसांई ने 7 मई को खुद इसके व इसके उच्चाधिकारियों की प्रशंसा में कसीदे पढने के लिये 5 नम्बर की मार्केट में एक छोटी सी जनसभा का आयोजन भी किया था। इस सभा में चापलूसों द्वारा पुलिस की प्रशंसा करते हुए कहा गया था कि क्षेत्र पूरी तरह से अपराध मुक्त है। क्षेत्र के निवासी बताते हैं कि इन्ही तथाकथित समाजसेवियों की मार्फ़त ही यह थानेदार लेन-देन व 'समझौते' इन्हीं के दफ़्तरों में बैठकर कराता है।

पुलिस विभाग में सुरेन्द्र स्वामी ही अकेला काली भेड़ नहीं है, इस जैसे और भी कई छिपे रूस्तम हैं। लेकिन इन सबके लिये कोई जिम्मेदार है तो वे उच्चाधिकारी जिनके जिम्मे इनकी निगरानी करना है जो निगरानी करने की अपेक्षा लूट में से अपना हिस्सा वसूल कर आंखे मूंदे रहते हैं। पुलिस की यही कार्यशैली हर प्रकार के अपराधियों को अपराध करने के लिये प्रेरित करती है।

पूर्व डी एस पी ने पूर्व ए डी जी पी को मारा लठ

गुड़गांव (म.मो.) दिनांक 15 मई को सेक्टर 15-1 के पार्क में सुबह की सैर करने वालों ने देखा एक अजब तमाशा। किसी ज़माने में फ़रीदाबाद में बतौर एस पी व डी एस पी तैनात रह चुके रेशम सिंह व बलजीत राठी अब गुड़गांव के सेक्टर 15-1 में रहते हैं। बलजीत राठी एडिशनल एस पी होकर और रेशम सिंह एडिशनल डी जी पी के पद से रिटायर हो चुके हैं। उस समय पार्क में सैर करने वालों के अनुसार करीब एक चक्कर तो इन दोनों ने साथ-साथ लगाया। फ़िर, अचानक एक निश्चित स्थान पर पहुंचते ही बलजीत राठी ने झाड़ियों में पहले से छिपा कर रखा अपना लठ निकालकर रेशम सिंह पर बरसाना शुरू कर दिया।

रेशम कुछ समझ पाते इतने में तो उन्हें दो लठ लग चुके थे। रेशम ने दीवार फ़ांद कर भागना चाहा पर कामयाब न हो सके। पीछे-पीछे भागे आ रहे राठी ने इस बीच एक और लठ जड़ दिया। इस बीच पार्क में सैर कर रहे बीसियों लोग वहां एकत्र हो गये और बीच-बचाव करा दिया। लोग़ों की इस भीड़ में हरियाणा के पूर्व मुख्य सचिव गुप्ता भी थे।

खोजबीन करने पर 'मज़दूर मोर्चा' ने पाया कि बलजीत राठी ने अभी कुछ ही सप्ताह पूर्व अपने किसी मित्र का परिचय रेशम सिंह से कराया था जो कि दिल्ली सरकार के किसी विभाग में कार्यकारी अभियन्ता है। कुछ दिनों बाद वह मित्र अकेला ही रेशम सिंह से मिलने चला गया तो उन्होंने पूछ लिया कि दरोगा जी (बलजीत राठी) का क्या हाल है, उन्हें कहां छोड़ आये? उस मित्र ने ये शब्द ज्यों के त्यों राठी को बताये तो राठी को अपने लिये इस्तेमाल किये गये दरोगा शब्द से इतनी तकलीफ़ हुई कि अगली सुबह घर से लठ ले जाकर सैर वाले पार्क की झाड़ी में छिपा दिया। जब रेशम सिंह सैर करने पहुंचे तो करीब एक चक्कर उनके साथ लगा कर मौका मिलते ही राठी ने लठ निकालकर प्रहार करना शुरू कर दिया।

प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक सतीश कुमार ने अपने स्वामित्व में रोनिज़ा प्रिंटर्स, 3बी-6, एनआईटी फरीदाबाद से मुद्रित करवा कर 1 डी/2बी.पी. नियर हार्डवेयर चौक, एनआईटी फरीदाबाद से प्रकाशित किया। Postal Reg. No. L/H.R/FBD/463-06